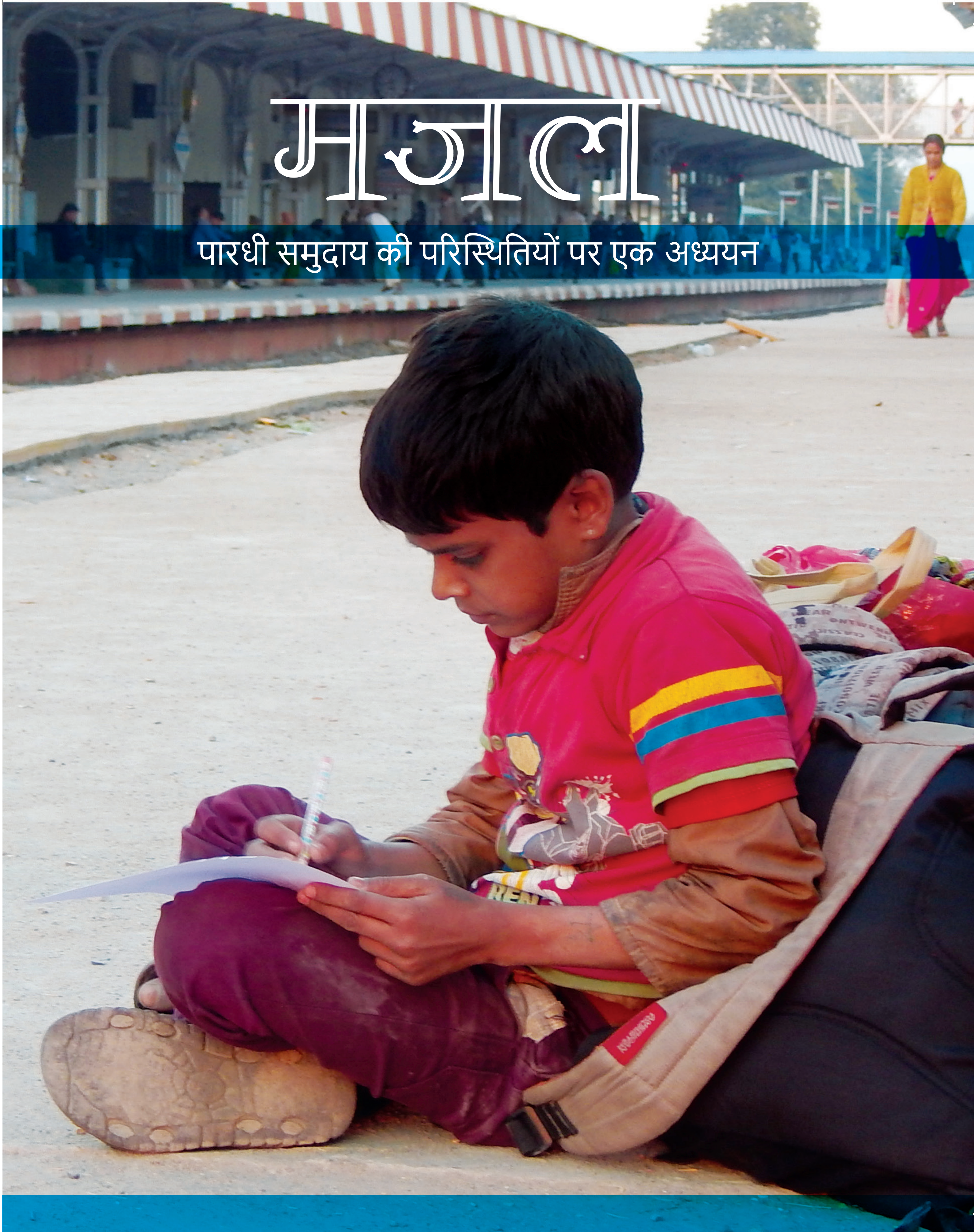
मजल

पारधी समुदाय की परिस्थितियों पर एक अध्ययन



सर्वे फॉर्म बनाने में सलाहकार –	रामस्वरूप पवार, सत्यनारायण पवार , राम बरस परमार, आयल बाई, दीनू बाई, आइडीन परमार, भरोस
सर्वेकर्ता –	अनिकेश पवार, सतपाल, उदित नारायण, तस्वीर परमार, जीनू, अभिषेक, रिस्वा, जन्नत सिंह, योगिता परमार, अमित पवार, अभिषेक सिसोदिया, पंजाब सिंह, नरेन्द्र सिंह, रानू पवार, जीतू पवार, गजेन्द्र सिंह
डाटा एंट्री –	नरेन्द्र सिंह, सतपाल पवार, तस्वीर परमार, अनिकेश पवार

माडशा (पारधी समुदाय से अतिरिक्त) सहयोग

डाटा एंट्री -	पूजा सोनाने, अन्नू धुर्वे, रेनू अगरिया
(डाटा में) अतिरिक्त सहयोग –	आलोका कान्हेरे
डाटा प्रबंधन (संकलन और ट्रेनिंग) -	विभोर वर्धन
रपट लेखन -	बृजेश वर्मा, पल्लव थुडगर, सुजाता गोठोसकर, सविता सोहित, शिवानी तनेजा
हिंदी अनुवाद(कुछ अंशों का) -	सुशील जोशी
फोटो-	मुस्कान लाइब्रेरी
डिज़ाइन -	मोहम्मद साहिल
वित्तीय सहयोग -	पॉल हैमलिन फाउंडेशन: हाशिएकृत समुदायों के लिए शिक्षा को पुनर्भाषित करना - 2

मजल

पारधी समुदाय की परिस्थितियों पर एक अध्ययन

2019

विषय-सूची

अध्याय 1: **पृष्ठभूमि**



आज की स्थिति को समझने के लिए कई बार हमें एक ऐतिहासिक नज़रिए की आवश्यकता होती है| वर्तमान महत्वपूर्ण है लेकिन आज के पहलुओं को समझने के लिए इतिहास सर्वप्रथम हो जाता है| इस पाठ में हम वर्तमान और इतिहास की सामान्य जानकारी को संक्षिप्त में पेश कर रहे हैं|

पारधियों की मुख्यधारा छवी

पारधी गिरोह के दो आरोपी गिरफ्तार, हजारों का माल बरामद (राज न्यूज़, 26.12.18)
पारधी गैंग: वहाँ लगी थीं ढेरों खिड़कियाँ, बच्चे सीख रहे थे उखाड़ना... पुलिस ने देखा तो फटी रह गई आँखें (पत्रिका, 7.10.17)

इस तरह की हैडिंग हमे हिंदी और अंग्रेज़ी अख़बारों में कई बार मिलते हैं; जब भी कोई कॉलोनी में चोरी होती है, तो पास के पारधी बसाहट में चोर ढूँढने पुलिस पहुँच ही जाती है और थाने में पूछ-ताछ के तरीके ऐसे अपनाये जाते हैं कि जो नहीं किया हो, वो भी कबूला जाता है| जब इस पर चर्चा किसी अधिकारीगण से होती है, तो इन वारदातों के और क्रूर रूप पेश होते हैं| बहुत पुलिसवालों के पास ऐसी कहानियां हैं कि ये लोग कैसे चोरी करते हैं, कैसे छोटे से छोटे दरवाज़े में से भी निकल जाते हैं और कैसे इनके बच्चे भी अपराध में शातिर हैं और इन लोगों के साथ नर्मी के लिए कोई जगह नहीं|

यह विवरण 1882 में गनथोर्प द्वारा किताब के रूप में टाइम्स ऑफ़ इंडिया में छपे लेखों और उसके पश्चात् 1909 में प्रकाशित 'लेकचर्स ऑन सम क्रिमिनल ट्राइब्स ऑफ़ इंडिया एंड रिलीजियस मेंडीकैन्ट्स' में गेयर, प्रधानाध्यापक, पुलिस ट्रेनिंग स्कूल, सागर द्वारा स्थापित की जा रही उपनिवेशी विचारधारा से अलग नहीं है| गेयर ने लिखा था कि 'जब भी कोई संपत्ति पर हमला हो रहा होता है, तो 'आदतन' लोग काम पर होते हैं, और इतने निडर और सफल वहीं लोग होते हैं, जिनकी जाति ने यह काम अपने हिस्से का बना लिया है; हर नए 'हमले' से उनका 'खून' और तीव्र और खुश होता है|'

इन सभी जगहों पर इस तरह की बातें आती है जिससे प्रतीत होता हैं कि इन समदुयाओं के लोग इंसान नहीं, बड़े बड़े खौफनाक गुट के सदस्य ही हैं, वो इन समाजों की औरतें हो, या बच्चे या बड़े; इन समाजों का हरेक इन्सान इसी छवि से दिखता था और अभी भी देखा जाता है|

पारधी समाज का इतिहास

पारधीयों की जाति कब और कहाँ से उत्पन्न हुई, इसके अलग सन्दर्भ मिलते हैं| यह स्पष्ट हैं कि इनका उत्पन्न होना 'शिकार' से जुड़ा है| मराठी में 'परध' का अर्थ होता है शिकार करना| पारधियों के विभिन्न समूहों के नाम भी उनके शिकार के अलग आयामों से जुड़े हैं; जैसे चीता पारधी, फासे पारधी, बैल पारधी लंगोटी पारधी, तेल वाले पारधी (जो मगरमच्छ का तेल बेचते थे)|

कुछ मौखिक और लिखित कहानियों में इनकी उत्पत्ति सृष्टि में शिकार करने के लिए स्पष्ट बोली है| वेरिएर एलेविन ने अपनी किताब, 'मिथ्स ऑफ़ मिडिल इंडिया' में छिन्दवाड़ा की एक गोंड कथा लिखी है कि राजा दर्पण और बिलारो की बेटी, बाई हिरोली के सात बेटे हुए थे और एक गुरु ने भविष्यवाणी करी थी कि इन बच्चों की आंवल से एक हिरन उभरेगा| जब यह हुआ, तब बाई हिरोली ने उनके सबसे बड़े बेटे को इसका शिकार करने के लिए भेजा और वो ही पहला पारधी बना| रस्सेल की किताब, *'द ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ़ द सेंट्रल प्रोविन्सस, वॉल्यूम 4''* में दर्ज़ है कि इस समुदाय के लोगों के अनुसार सबसे पहला पारधी एक गोंड था, जिसे महादेव ने ऐसे शिकार पकड़ना सिखाया जिससे वो जानवर को गोली से मार डालने के पाप से बच सकें इसलिए आज भी पारधी बन्दक नहीं इस्तमाल करते हैं| जब रावण ने सीता का अपहरण किया था, तब पारधियों ने भी राम को अपनी सेवाएं देने के लिए साथ गए थे| उनकी जीत के बाद राम ने 'पारधी' से पूछा कि तुम्हे क्या इनाम दिया जाए, तब उन्होंने कहा था कि आपकी चौकीदारी की सेवा में रहेंगे और अपने आराम के वक्त में शिकार करने की छूट दी जाए जो कि राम ने स्वीकारा था| अभी के पारधी इसी बावरी के वंशज हैं| *(ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ़ नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सस एंड औन्ध, वॉल्यूम 1, विलियम क्रूक)* वर्तमान समय में जीवित बुजुर्गों ने उनकी उत्पत्ति से जुड़ी कहानी में भी यह बात झलकती है| जब ईश्वर मिस्त्री, बुनकर, कुम्हार इत्यादि प्राणियों को बनाकर आराम कर रहे थे, तभी उन्हें चार आँखों वाला हिरन दिखा| ईश्वर ने उसे पकड़ने की कोशिश करी लेकिन वो अपनी पीछे की दो आँखों से हमेशा उनको आते देख लेता था और फरार हो पाता| तब ईश्वर थक कर समझें कि उन्हें एक और ऐसे प्राणी बनाने की ज़रूरत

है, जो उनको यह हिरन पकड़ सके| उन्होंने अपने शरीर के पसीने और धुल से इस प्राणी को बनाया जो कि रमा पारधी था| रमा पारधी ने लकड़ी के 64 टुकड़ों से जाल बिछाया और उस हिरन को पकड़के भगवान तक पहुँचाया| ईश्वर ने कहा यह ही तुम्हारा काम है, और ये ही तुम्हारी किस्मत भी|

1871 - अपराधिक जनजाति कानून

1857 की आज़ादी की आग वापस नहीं भड़के, इसकी चिंता में अंग्रेज़ हुकूमत कई कानून लायी; 1870 में 'राजद्रोह' की धारा भारतीय दंड संहिता में जोड़ी गई, और अगले साल, 1871 में अपराधिक जनजाति कानून लाया गया| अंग्रेज़ों के विरुद्ध किसी भी इन्सान को कैद करने के लिए यह एक आसान कानून था जिसके चलते लगातार लोगों पर निगरानी रखी जाती और सस्ती या मुफ्त मज़दूरी ली जा सकती थी|

अंग्रेज़ों की नज़र से कुछ ख़ास समुदायों के ऊपर उनको यह कानून लागू करना लाभदायक था -

1. ऐसे समुदाय जो उनका विद्रोह कर रहे थे और राजघरानों की सेनाओं में आगे थे या अंग्रेज़ों को उनके गाँव में कब्ज़ा करने नहीं दे रहे थे|
2. घुम्मकड़ समुदाय क्योंकि इनसे वसूली करना मुश्किल था या विद्रोह की खबर पहुंचाने में इनकी भूमिका होती थी|
3. जंगल से जुड़े जातियां - ताकि उनको लकड़ी और टिम्बर तक पहुंचना मुश्किल न हो| 1880 के दशक के वन कानूनों ने घुमक्कड़ समुदायों को वनोपज, यहां तक कि बाँस और पत्तियां, संग्रह करने से रोका। सामूहिक चारागाह और चराई क्षेत्रों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
4. शहरों के पास कुछ समुदाय - जिन्हें वे किसी कारखाने और श्रम के उपयोग में लाना चाहते थे|
5. ऐसे समुदाय जिनके व्यापार सरकार काबू करना चाहते थे, जैसे नमक का व्यापार या सिक्के बनाने का काम|

अतः 1871 के कानून के मार्फ़त उत्तर भारत के ज़्यादातर क्षेत्र, फिर 1876 में बंगाल प्रेसीडेंसी और अन्य क्षेत्र और फिर 1911 में मद्रास प्रेसीडेंसी और फिर 1924 में सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया| इसकी चपेट में 200 से अधिक समुदायों को लाया गया| कानून में लगातार संशोधन हुए जिससे लोगों को अपनी हर जगह के आने-जाने पर खबर देनी होती थी; सरकार लोगों को नज़रबंध करके विशेष काम के लिए मजबूर कर सकती थी; कई जगहों पर समुदायों के बड़ी बड़ी आबादी को एक जगह जमा कर 'खुल्ले जेल' में रखा जाता था; शासन इन समुदायों के बच्चों को इनके माता-पिता से अलग करने का अधिकार रखती थी; इन जातियों के हरेक इंसान को उसके नज़दीक के पुलिस थाने में अंगुली के निशान देने होंगे| यह सब 'सुधार' के नाम पर लागू किया गया था लेकिन वास्तव में राजनैतिक नियंत्रण का माध्यम ही था|

ऐसे कई सिद्धांत हैं जो पूर्वाग्रहों, व्यक्तियों व समूहों की रूढ़ छवियां निर्मित करने तथा उन्हें निशाना बनाने को सही ठहराते हैं। इनमें से एक सिद्धांत सुजन्म (Eugene) का है। इस सिद्धांत को फ्रांसिस गाल्टन ने लोकप्रिय बनाया था। सुजन्म के सिद्धांतविद मानते हैं कि कुछ समुदाय और व्यक्ति जन्मजात हीन या निकृष्ट होते हैं – यानी उनका मत है कि कुछ लोगों, समूहों, और समुदायों के अन्य से निकृष्ट होने के पीछे कुछ कारण होते हैं। एक सुजन्म सिद्धांतकार ने अनुवांशिक लक्षणों में 'कंगाली' को भी शामिल किया है। एक अन्य ने आपराधिक प्रवृत्ति को आनुवंशिक लक्षण माना है।[2]

भारत के संदर्भ में, यहां की सामाजिक व्यवस्था में जातिवाद नज़रिया रहा है कि व्यवसाय पिता से पुत्र को हस्तांतरित होते है। उसी नज़र से यह भी माना गया कि 'आपराधिक वृत्ति' भी हस्तातंरित होती होगी| यूरोप में यह समझ सुजन्मवादी नज़रिये से पनप रही थी| एक ख़ास नाप की खोपड़ी और शरीर अपराधिक श्रेणी के लोगों से जुड़ा है, साथ ही 'घुमक्कड़' समाजों के प्रति एक शक और पूर्वाग्रह बहुत अन्दर से भरे हुए थे| अंग्रेज़ नीतिकारों ने यह तर्क दिया है कि जहां इंग्लैंड में मूलत: जैविक नियतिवाद प्रचलित था, वहीं विमुक्त जनजातियों के बारे में माना जाता था कि वे सदैव विश्वासघाती 'आनुवंशिक रूप से आपराधिक' रही हैं।[4]

पारधी और अपराधिक जाति का ठप्पा

अलग-अलग क्षेत्रों में पारधियों को भी इस कानून में लाया गया| बहुत स्पष्ट नहीं है कि क्यों इनको इस कानून के श्रेणी में लाया गया है क्यूंकि अभी तक कोई ऐसे दस्तावेज सामने नहीं आये हैं कि इस समुदाय को उस इलाके के लिए किन आधारों पर अपराधिक घोषित किया गया| इस समाज के इतिहास से यह समझ आता है कि ये महाराणा प्रताप की सेना में बहुत सशक्त सेनानी थे; ये घुम्मकड़ समुदाय थे; इनका जंगल से बहुत गहरा वास्ता हमेशा रहा; किन्ही गाँवों में चौकीदारी के काम भी दिये जाते थे - सम्भवतः ये सभी गुण उनके लिए अंग्रेज़ों की नज़र में शक के कारण बने|

पारधी समाज में बुजुर्गों का मानना है कि उनके परिवारों में अपराध की कोई भी फ़िराक तभी शुरू हुई जब जीवन के दूसरे मौके ख़त्म होते गए और उनके पारम्परिक काम को ही अपराध की श्रेणी में लाया गया| तीतर, खरगोश, सूअर और अन्य छोटे जानवरों के शिकार करनेवाले पारधी समुदाय का जीवनयापन का साधन, जो अब तक एक कौशल के रूप में देखा जाता था, रातोंरात गैर-कानूनी हो गया| जंगल और जानवरों

के संरक्षण के नाम पर 1972 में लाये गए कानून ने पारधियों और जंगल पर आधारित विभिन्न समुदायों के जीवन को तहस-महस में डाल दिया|

पारधी समाज की वर्तमान स्थिति

पारधी समाज के लोग महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, गुजरात व मध्य प्रदेश में प्रमुखतः रहते हैं| कई जगहों की जानकारी और शोध से मालूम होता है कि सब तरफ उनकी परिस्थितियां काफी वांछनीय हैं|

महाराष्ट्र के तुजलपुर शहर के अध्ययन में पाया गया कि केवल 1.2% पारधी परिवारों के पास ज़मीन थी और केवल 6% लोग साक्षर थे| मुम्बई के अध्ययन ने पाया कि 1018 लोगों में से केवल 3 इन्सान (0.5%) महीने की तनख्वा पर काम कर रहे थे और बाकि सब रोज़ की अनिश्चित्ता से जीते हैं| इसी अध्ययन में सर्वे टीम को एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिल पाया जो सहजता से लिख-पढ़ सकते थे|

देशभर की विमुक्त जातियों के अध्ययन ने मध्य प्रदेश में पाया कि औसतन 26% बच्चे इन जातियों के पढ़ रहे हैं, लेकिन पारधी समाज में यह केवल 15% पर है| जहाँ सभी विमुक्त जातियों में ड्राप-आउट रेट 25 % पर है, तो पारधी समाज में 37.1% लोग स्कूल पूरा करने के पहले ही ड्राप-आउट हो चुके थे|

कोई काम-काज के नए विकल्प नहीं खुले और अपराधिक जाति का धब्बा उनके लिए और प्रतिगामी स्थापित होता गया है| इसके चलते कहीं कहीं चोरी और जेब काटने का काम शुरू हुआ है, लेकिन यह बिलकुल भी मतलब नहीं कि हरेक व्यक्ति या समूह इसमें जुड़ा है|

इस समाज की एक और सच्चाई है; बिरले ही हमारे सामने निम्नलिखित प्रकार की हैडिंग भी अखबारों में आती हैं -

पुलिस प्रतारना से त्रस्त, (पारधी) महिला ने लगाई आग
(हितवाद, 19.11.17)

पारधियों के बच्चों की थालियाँ अलग
(पत्रिका, 14.8.15)

तेरी जात तो चोर है
(बीबीसी, 15.3.12)

गैर कानूनी हिरासत में पारधी बच्चे न्यायालय में पेश
(हिंदुस्तान टाइम्स, 19.1.09)

लेकिन रोज़ की वास्तविकता के चलते लोग इन पर लगातार संघर्ष नहीं कर पाते और जल्द ही यह सच्चाई रोज़ की मजबूरियों में दब जाती है और वापस मुख्यधारा सोच ही हमारी याददाश्त और व्यवहार में हावी रहती है|

मुख्यधारा समाज में इतिहास से आज तक एक स्तर पर काफी गहरे पूर्वाग्रह होते हैं। दूसरे स्तर उन पूर्वाग्रहों के औचित्य होते हैं। तीसरे स्तर पर निहित स्वार्थों की भूमिका होती है जो उन पूर्वाग्रहों को बनाए रखने और पुष्ट करने का काम करते हैं। कानून बनाने में भी अंग्रेज़ हुकूमत के कई फायदे थे, और आज भी विभिन्न स्तरों पर पूर्वाग्रह कार्यरत हैं, तो कहीं किसी तबके का स्वार्थ| समाज में किसी एक को लगातार पीटना पाटना और समाज की मुश्किलों के लिए कारक मानना सत्ताधारियों और निर्णायकों के लिए आसान विकल्प होता है| यह नकरात्मकता की छवि हमारे ऊपर थोपी गयी है| यह शोध लोगों के नज़रिए से उनकी परिस्थितयों का विवरण है| हम एक ऐसा इतिहास के भोगी हैं, जिसके असर अभी भी खुलते चल रहे हैं और वर्तमान का राज भी हमारे साथ हुए ऐतिहासिक अपराध को सही नहीं कर रहा|

अध्याय 2:
रिसर्च की प्रक्रिया और कार्य-पद्धति



भोपाल का चयन

भोपाल मध्य प्रदेश की राजधानी है और यही उम्मीद कर सकते हैं कि यहाँ रह रहे लोगों की परिस्थितियां अंदरूनी इलाकों से बेहतर होगी इसलिए यहाँ की स्थिति समझने से हम अंदाज़ा लगा सकते हैं कि इस विमुक्त जाति के जीवन में कितने मौके खुल पाए हैं|

एक और कारण है कि 2002 में मध्य प्रदेश के तीन जिलों से पारधियों को अनूसूचित जनजाति से हटाकर सामान्य की श्रेणी में लाया गया| ज़मीनी कौनसी परिस्थितयों के कारण यह हो पाया है, यह सोचने की बात है| पारधी समाज के लोगों की तरफ से यह सवाल बार बार था कि हमें कैसे सम्पन्न माना गया और उनकी वास्तविक स्थिति को समझने के लिए एक सर्वे की आवश्यकता लग रही थी|

शोध के सिद्धांत और मार्गदर्शन

इस शोध के दौरान कुछ बातों का ध्यान रखा गया -

समुदाय के सम्मान और इस प्रक्रिया से सशक्त होने का अहसास: यह रिसर्च करते वक्त हम सब में यह स्पष्टता थी कि पारधी समुदाय सिर्फ हाशिये पर रहनेवाला समुदाय नहीं है, बल्कि सदियों से पुलिस, सरकार और समाज द्वारा सताया हुआ समाज है। पूरे समुदाय में कहीं न कहीं एक भयानक एहसास व्याप्त है। हमारे कारण किसी भी तरह यह एहसास और पुख्ता ना हो जाए इसके बारे में हम सजग थे।

समुदाय की सहभागिता: कोशिश थी कि शुरुआत से समुदाय के लोग इस प्रक्रिया में शामिल हों ताकि वो इस प्रक्रिया में जुड़ सकें और इसके नतीजे को अपना सकें| भोपाल में संपर्क के पारधी स्त्री-पुरुषों की कुछ बैठकें बुलाई गई, जिनमें चर्चा हुई -

- इस सर्वेषण के मकसद पर बात हुई - पारधी समुदाय के आज की वास्तविक स्थिति के बारे में बहुत जानकारी नहीं है जो हम दुनिया के सामने और सरकार के सामने रख सके और अपने परिस्थितियों में बेहतरी के लिए शासन का ध्यान आकर्षित कर सकें|
- सर्वे के दायरे को तय करने हेतु बात हुई कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए, जीवन के कौनसे आयामों पर जानकारी इकट्ठे करें| चर्चा से उभर रहा था कि कैसे हमारी ज़िंदगी के बड़े, छोटे आयाम, हमारे अधिकारों की (अ)पूर्ति एक तरफ हमारी पहचान और रीति-रिवाज से जुड़ी है और दूसरी तरफ, शासन के कार्यप्रणाली की सफलताओं या त्रुटियों के आयने हैं| दूसरे समाज से देखें तो हमारी शिक्षा, घर की स्थिति, पलायन के साथ साथ कमाई के विकल्प और पुलिस प्रशासन के ख़ास आयाम हैं जो अन्य समाजों से अलग रास्ते पर ही चलते हैं| आत्महत्या का चलन भी समाज के बीच एक बड़ी चुनौती पहचानी गयी|
- प्रश्नावली पर चर्चा – विभिन्न आयामों पर शोधकर्ता दल ने प्रश्न बनाये और वापस समुदाय प्रतिनिधियों के साथ साझा किया| सवालों के संवेदनशीलता की नज़र से कुछ बातें बदली गयीं और लोगों के सहयोग से सही विकल्पों को शुरू से ही प्रश्नावली में लाया गया ताकि सर्वे पश्चात् आंकड़ों को जोड़ने में ज़्यादा मुश्किल नहीं हो|

जानकारी इकट्ठी करना

जैसे ऊपर बताया है, यह प्रक्रिया कहीं न कहीं लोगों की एक ज़रूरत से निकली थी और इस प्रक्रिया में पारधी समाज के बहुत लोग हमारे साथ थे| अतैव जानकारी इकट्ठे करने के लिए भी उनके ही कुछ लिखे-पढ़े लोगों का एक स्वाभाविक चयन की बात हुई| उनकी सहभागिता इस अध्ययन को बहुत मदद करती क्यूंकि लोगों तक पहुँचने में भी आसानी थी और वास्तविकता से भी परिचित थे| इसके चलते सच्चे और बिना झिझक के उत्तर मिलने की सम्भावना थी| और साथ साथ इस प्रक्रिया में वो भी सशक्त हो सकते थे|

इस प्रक्रिया में एक चुनौती यह थी कि बहुत ही कम पारधी पढ़-लिख पाते थे और यदि हम चाहे की लड़कियां भी शामिल हो तो उन्होंने ने तो छोटी कक्षाओं में ही पढाई छोड़ दी थी सो पढने की आदत छूट गयी थी| सो यही तय किया गया कि जितना हो सके उतनी प्रश्नावली चित्रों के रूप में तैयार करें और यह काम जोड़ियों में करें शुरू में|

बस्ती की एक लड़की और तीन लड़कों ने यह काम किया और यही देखा कि सबने यह काम बहुत शिद्दत से किया| संस्था के कार्यकर्ताओं ने बस्ती में जाकर बस्ती के युवाओं के साथ प्रश्नावली को शुरू में क्रियान्वयित किया| इसमें काफी समय भी लगा लेकिन प्रक्रिया ने उन्हें व्यक्तिगत परिस्थितियों को बड़े रूप में पहचानने का मौका मिला| साक्षात्कर्ताओं ने कई जगहों पर विस्तृत लिखकर परिस्थिति और घटनाओं का खुलासा किया|

क्योँकि भोपाल, रायसेन और सीहोरे में पारधियों की स्थिति को ख़ास समझना चाहते थे, तो सबसे पहले भोपाल की सभी पारधी बसाहटों तक पहुँचने का प्रयास किया गया| वहाँ घरों को क्रमरहित पहुंचे गए| यही ध्यान रखा गया कि बसाहट के हर कोने तक पहुँचें और एक ही परिवार के तीन अलग शाखाओं में साक्षात्कार न करके नए परिवारों से बात करें ताकि विशिष्ट जानकारी निकल पाए|

डाटा का विश्लेषण

इस अध्ययन ने फील्ड से बहुत सारे आंकड़ों को निकाला है| हर फॉर्म को एक्सेल में कोड-अनुसार एंट्री की गयी थी| जिन सवालों पर गुणात्मक उत्तर आये थे, उनको अलग से एकजाही किया गया| इससे आंकड़ों के

और पहलुओं को समझने का मौका मिला|

आंकड़ों को एकजाही करके एक संक्षिप्त प्रस्तुति की गयी और इसके आधार पर ख़ास मुद्दों को चुना गया और समूह चर्चाओं (FGD) द्वारा और समझा गया| कुछ ट्रेंड (झुकाव) को समझने के लिए समुदाय प्रतिनिधियों से खास सवाल पूछे गए कि समझ पाए कि क्या वास्तविकताएं इस प्रवृति को पनपा रही हैं| उदाहरण, बहुत लोगों ने पलायन के पीछे झगड़े का कारण बोला था, सो इनको और समझा गया| कुछ आंकड़ों (जो हमको नहीं समझ आ रहे थे) को पुनः जांचा गया| इससे परिस्थिति और समझने को मिली और साथ ही आंकड़ों की पुष्टि कर पाए| उदाहरण, एक ख़ास उम्र में लड़कियों की संख्या लड़कों के मुकाबले कम लग रही थी| वैसे ही अप्राकृतिक मौत में रेल-एक्सीडेंट का ज़िक्र आ रहा था जबकि रेल की पटरी के पास तो कोई भी बसाहट नहीं थी|

सर्वे की पहुँच

जानकारी भोपाल में रहने वाले 221 पारधी परिवारों से हासिल की गई है। शहर में 4 बड़ी पारधी बस्तियां हैं जहां 157 साक्षात्कार किए गए थे (71 प्रतिशत)। इसके अलावा, 35 साक्षात्कार शहर की छोटी बस्तियों में तथा 15 साक्षात्कार उनैदा में किए गए, जो शहर से सटा एक गांव है जहां पारधियों की काफी संख्या है। शेष 14 साक्षात्कार भी इन्हीं बसाहटों में किए गए थे, लेकिन लोगों ने अपना पता भोपाल के अन्य गाँव और सीहोर और रायसेन के पड़ोसी ज़िलों को बताया। इन चार बड़ी बसाहटों में ही समूह चर्चाएँ महिला-पुरुष के मिश्रित समूह के साथ की गयीं|

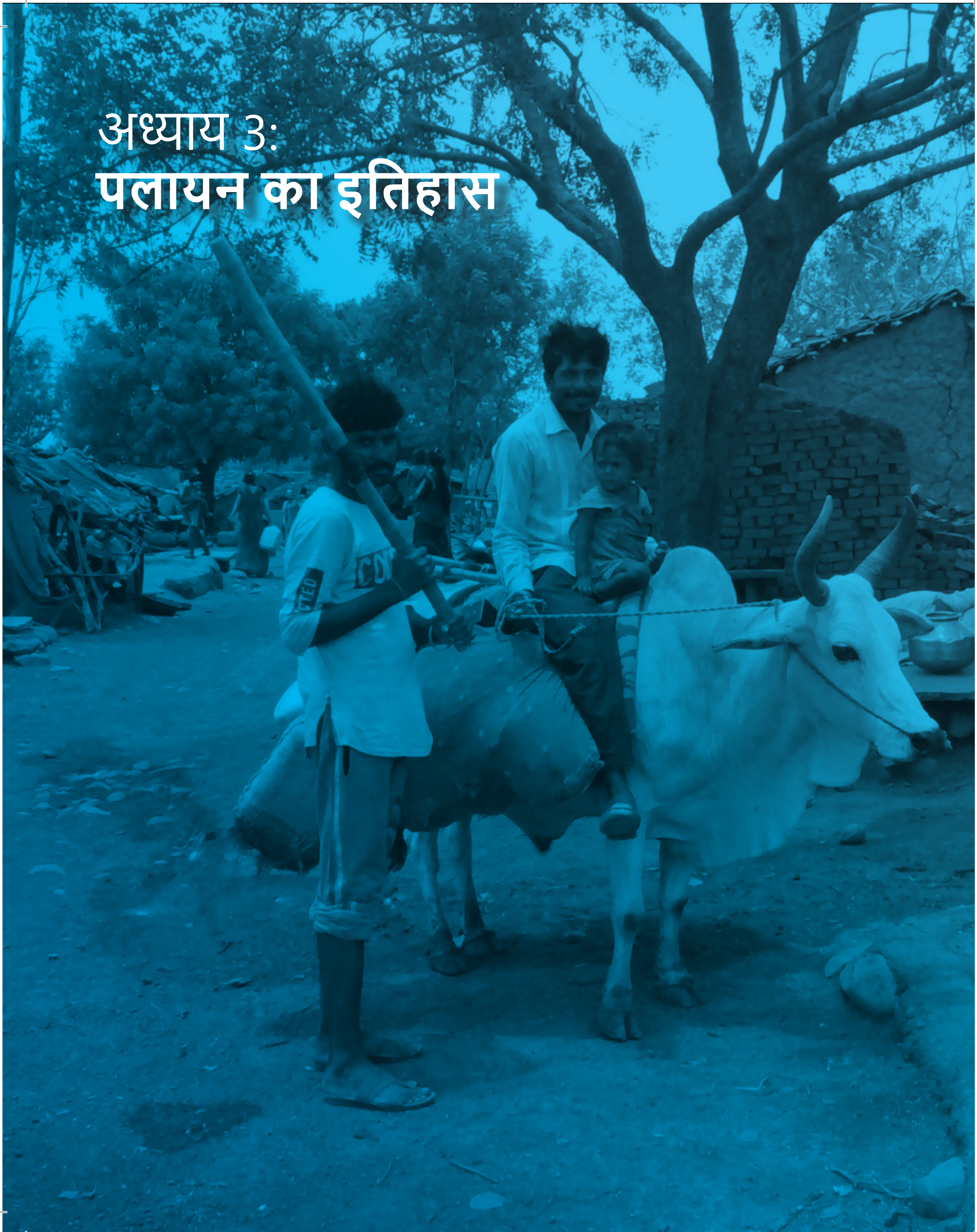
बस्ती	परिवारों की संख्या जिनसे साक्षात्कार किया गया
राजीव नगर, भोपाल	39
गांधी नगर, भोपाल	48
न्यू अंबेडकर नगर (बंजारी बस्ती)	19
एहसान नगर, भोपाल	51
पूजा कॉलोनी, भोपाल	4
गांधी नगर (छोटी बस्ती – गोल्डन होटल)	6
नयापुरा (बांसखेड़ी की पुनर्वास बस्ती)	10
बैरागढ़	6
रिंग गार्डन	9
निकटस्थ गांव उ	15
अन्य गांव (10)	14
योग	**221**

इस शोध की सीमाएं

हमने सोचा था कि अध्ययन तीन प्रभावित जिलों में करेंगे, लेकिन समय की सीमाओं को लेते हुए, केवल भोपाल में ही किया गया है|

यह अध्ययन भोपाल में रहवासी पारधियों पर केन्द्रित है; यहाँ सभी परिवार अपनी क्षेत्र-क्षेत्र की पंचायत के अलावा एक ही बड़ी जात पंचायत के अंतर्गत आते हैं तो कुछ वास्तविकताएं उनके पंचायत से उभर रहे निर्णय और रीतियों से जुड़ी हैं| साथ ही लोगों की कहीं पास-दूर से रिश्तेदारी है| इन दो कारणों से इस शोध की एक सीमा है कि यह आंकड़े केवल यहाँ के लोगों की परिस्थितियों को झलकाते हैं और सीधे-सीधे देश के पारधियों पर लागू नहीं कर सकते| हालांकि दूसरे जगहों के पारधी – विशेष अध्ययन भी यहाँ जैसी स्थितियां दिखा रहे हैं (पहले अध्याय में इस पर थोड़ा ज़िक्र है)|

अध्याय 3:
पलायन का इतिहास



बसने का इतिहास

221 में से मात्र 5 परिवारों ने कहा कि वे हमेशा से वर्तमान स्थान पर रहते रहे हैं। शेष सबने अपने प्रवास और बसने और फिर से बसने का इतिहास साझा किया।

अधिकांश उत्तरदाता (67 प्रतिशत) भोपाल शहर में अपनी वर्तमान बसाहट में पिछले 10 से लेकर 30 सालों के बीच आए हैं। लगभग हर 10 में से एक परिवार यहां हाल के 10 वर्षों से रह रहा है। रुझान बताते हैं कि स्वतंत्रता के बाद भी पारधी समुदाय की स्थिति में स्थायित्व नहीं रहा है। पिछले कुछ दशकों में ऐसी उथल-पुथल रही है कि लोग जगह-जगह भटकते रहे हैं। हालांकि बस्ती में बिलकुल तुरंत के दो-पांच सालों में बहुत सारे नए परिवारों का आगमन नहीं हुआ, किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि स्थितियों में कोई सुधार हुआ है या स्थायित्व आया है। ज़्यादातर घरों में लोगों को आना-जाना जुड़ा रहता है; जहाँ मुश्किल ज़्यादा होती है, वहां से कुछ देर के लिए चले जाते हैं|

कब से वर्तमान जगह पर रह रहे हैं?	संख्या (कुल में प्रतिशत)
लगभग 10 वर्षों से	24 परिवार (10.9%)
11 से 30 वर्ष	149 परिवार (67.4%)
30 से 50 वर्ष	30 परिवार (13.6%)
50 से 70 वर्ष	13 परिवार (5.9%)
70 वर्ष से अधिक	5 परिवार (2.2%)

हालांकि उनके मूल स्थान में इंदौर, भोपाल और सीहोर जैसे कई ज़िले शामिल हैं, किंतु बड़ी संख्या (42 प्रतिशत) भोपाल ज़िले की हुज़ूर तहसील से हैं। अधिकांश लोगों (61 प्रतिशत) का अंतिम निवास स्थान भी भोपाल ज़िले में ही था। प्रत्येक चार में से एक परिवार (24 प्रतिशत) पड़ोसी सीहोर ज़िले से आया है। इसके अलावा लगभग 10 प्रतिशत परिवार मध्य प्रदेश के ही अन्य ज़िलों (रायसेन, विदिशा, गुना, राजगढ़, मंडला, देवास और इंदौर) से आए हैं जहां इन कबीलों के दूर के रिश्तेदार निवास करते हैं। तीन परिवार ऐसे थे जिनकी जड़ें कोटा (राजस्थान) में थीं।

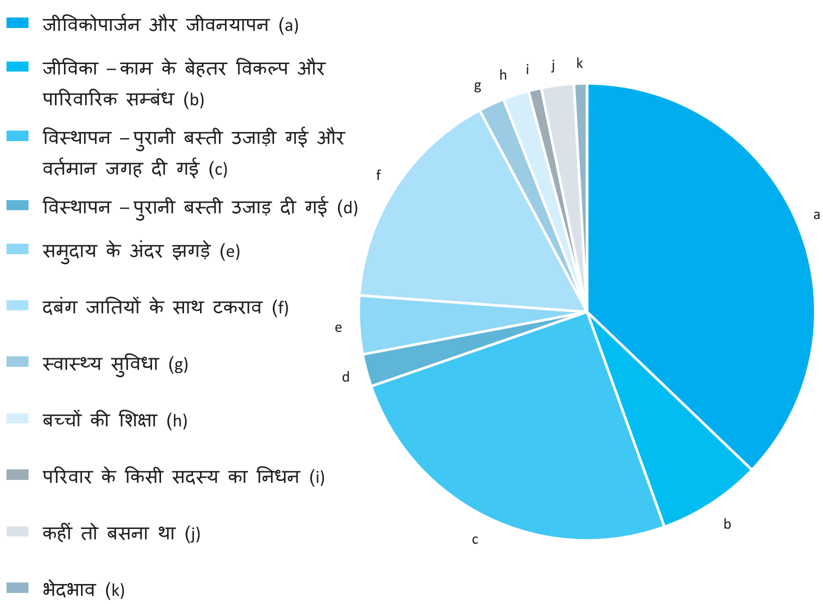
भोपाल शहर में अधिकांश पारधी समुदाय का भौगोलिक फैलाव और उनके मूल स्थान पूर्ववर्ती भोपाल रियासत की सीमाओं से मेल खाते हैं। लोगों ने कई किस्से बताए हैं कि वे नवाब के राज में स्थानीय शाही परिवारों के बाज़ारों और ज़रूरतों की पूर्ति करते थे। इस इलाके में ऐसी पुश्तैनी जड़ों के होते हुए भी समुदाय को एक जगह बसने के अपने प्रयासों के बावजूद समय-समय पर पलायन करने को मजबूर किया जाता है।

पलायन के कारण

हालांकि अधिकांश लोग पलायन और/या वर्तमान जगह पर बसने का एक इकलौता कारण बताते हैं, किंतु कुछ लोगों ने एकाधिक कारण भी बताए। चार घरों से कोई जवाब नहीं मिला।सर्वेक्षण में शामिल एक-तिहाई से थोड़े ज़्यादा घरों (81 परिवारों) ने कहा कि वे भोपाल आए थे क्योंकि पहले वाली जगह पर कमाकर परिवार का पेट भरना मुश्किल हो गया था। फसल के लिए वर्षा पर निर्भरता, तीतर व अन्य छोटे जानवरों के शिकार के लिए जंगल तक पहुंच का अभाव, घटते जंगल और गांव में काम के अभाव ने उन्हें जीवनयापन के लिए नई जगह जाने को मजबूर कर दिया था। एक उत्तरदाता के शब्दों में, "गरीबी बहुत थी गांव में"। एक अन्य उत्तरदाता ने स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया, "रोज़गार नहीं तो भुखमरी के हालात थे।"

गांधी नगर तथा एहसान नगर के 55 परिवारों ने बताया कि वे बैरागढ़ (पास की ही एक बस्ती) में रह रहे थे किंतु इलाके के सिंधियों ने 5-6 हज़ार का मुआवज़ा देकर पूरी झुग्गी बस्ती खाली करवा ली और उन्हें गांधी नगर में प्लॉट दे दिए गए। इस तरह से वे वर्तमान जगह पर आए हैं। राजीव नगर के पांच परिवारों ने बताया कि जब जवाहर चौक की उनकी बस्ती को नगर निगम ने तोड़ दिया, तब उन्हें यहां बसाया गया था।

वर्तमान जगह पर आने के कारण



काफी बड़ी संख्या में (44) परिवारों को पुरानी जगह पर टकराव की स्थिति की वजह से शहर आना पड़ा था। जिन झगड़ों की बात कही गई, उनमें से 4 तो परिवार के अंदर के ही थे जबकि लगभग उतनी ही संख्या

पारधी समुदाय के अंदर के झगड़ों की थी। कई टकराव अन्य समुदायों के साथ हुए थे। परिवारों ने बताया कि कुछ इलाकों में उन्हें ज़मीन जोतने नहीं दिया जाता था। अन्य जगहों पर उनकी संख्या कम थी और अन्य समुदायों के सदस्यों के साथ झगड़े होने की वजह से उन्हें ऐसे इलाकों में जाना पड़ा था जहां उनके कबीले के ज़्यादा लोग बसे हुए थे।

सोलह परिवारों ने यहां की बस्तियों में ठिया बना लिया था और यह उम्मीद करते हैं कि पहले से मौजूद पारिवारिक सम्बंधों के चलते उन्हें अपने जीवन में बेहतर विकल्प मिल पाएंगे। अलबत्ता, यह कहते हुए भी कुछ लोगों ने ज़रूर यह बताया कि उनके कुछ खास रिश्तेदार यहां बस गए थे और इसीलिए वे भी यहां आ गए। कम से कम यहां भीख तो मांग सकते हैं या दुकान लगा सकते हैं या कचरा बीनने का काम करके गुज़ारा कर सकते हैं। इससे पता चलता है कि लोग शहरों में ख्वाब पूरे करने नहीं बल्कि जीवन निर्वाह की उम्मीद में आते हैं।

तीन परिवारों ने कहा कि वे वर्षों से एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहे हैं और अपने कुनबे के अन्य सदस्यों के साथ बस गए हैं।

शहर आने के कुछ अन्य कारण बहुत कम परिवारों ने बताए किंतु यहां उनका ज़िक्र करना महत्वपूर्ण है। चार परिवारों ने कहा कि वे पुरानी जगह से हटे क्योंकि वहां बच्चों के लिए स्कूल नहीं था। तीन परिवारों ने बताया कि वे यहां अपने परिवार के सदस्यों के लिए स्वास्थ्य सुविधा हासिल करने की दृष्टि से आए हैं। दो परिवारों ने बताया कि परिवार में मृत्यु होने के बाद वे नई जगह पर आए। पांच परिवारों ने कहा कि उनकी ज़मीन पर एक सीमेंट फैक्टरी या किसी बेलदार ने जबरन कब्ज़ा कर लिया था। दो परिवारों ने बताया कि उन्होंने अपनी पुरानी जगह छोड़ी क्योंकि वहां उनके साथ भेदभाव होता था।

सितंबर 2007 की बात है जब चौथिया गांव (मुलताई तहसील, ज़िला बैतुल) के पारधी बाशिंदों की ज़िंदगी उथल-पुथल हो गई थी। स्थानीय नेताओं के नेतृत्व में एक भीड़ ने....परिवारों की बस्ती पर हमला किया और लूटपाट, तोड़-फोड़ की। यह सब होता रहा और पुलिस मूक दर्शक बनी खड़ी रही। 12 महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया और एक दम्पति की हत्या की गई।

यह भयानक विनाश और लोगों के अधिकारों पर हमला तथा महिलाओं पर यौन अत्याचार एक कुनबी महिला के बलात्कार का बदला लेने के लिए किए गए थे। जिन दो पारधियों ने यह अपराध किया था, वे चौथिया गांव के निवासी भी नहीं थे। दरअसल, चौथिया गांव के लोगों ने तो अपराधियों को ढूंढने में पुलिस की मदद की थी। दो व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और इस अपराध की सज़ा भी दी गई।

किंतु पारधियों की 400 से ज़्यादा की आबादी प्रशासन द्वारा पुनर्वास के इन्तज़ार में बेतूल ज़िले में शरणार्थियों की तरह रहने को मजबूर की जा रही है। उनकी कृषि ज़मीन चली गई है और वे भीख मांगकर या जो काम मिले वही करके गुज़ारा कर रहे हैं।

प्रवास (पलायन) के इन कारणों की छानबीन करें तो देखा जा सकता है कि सारे परिवारों को किसी न किसी संकट की स्थिति के कारण और अस्तित्व की रक्षा के लिए पलायन करना पड़ा है। पलायन के मुख्य कारण ही पूछे गए थे, इसलिए हो सकता है कि विपत्ति के अन्य कारण भी रहे हों किंतु लोगों ने कोई एक कारण बताया हो क्योंकि वह प्रमुख था। अर्थात इसका मतलब यह नहीं है कि अन्य कारक इसके पीछे नहीं थे।

प्रवास और बसना खींचतान और चुनौतियों से भरा सफर रहा है

भोपाल के राजीव नगर के पारधी समुदाय का बार-बार बसने का एक लंबा इतिहास रहा है। समुदाय के एक हिस्से की जड़ें अबदुल्लागंज में हैं। वहां कोई ज़मीन न होने के चलते जीवन यापन एक समस्या थी, इसलिए लोग बाहर निकलने लगे। अयाल बाई उस यात्रा की बातें बताती हैं जो उनके माता-पिता ने वहां से शुरू की थी। लोग अबदुल्लागंज से भोपाल के 40 किलोमीटर के फासले पर अलग-अलग गांवों (अबदुल्लागंज, मंडीदीप, मिसरोद, बरखेड़ी पठानी) में महीनों और बरसों तक टिके। भोपाल के किनारे पर एक स्थान पर वे 15 वर्षों तक रहे और अपनी ज़मीन को जानवरों से बचाते रहे। शहर की (वर्तमान) सीमा के अंदर लोग तंबू गाड़कर रहे और अलग-अलग जगहों पर साल-दो साल के लिए काम करते रहे – पिपलानी, अन्ना नगर, गोविंदपुरा, पेट्रोल पंप का मैदान, पुल बोगदा। इन स्थानों को लोगों के जन्म व मृत्यु के आधार पर याद किया जाता है। उन जगहों के पड़ोसी तथा घरों व बस्तियों की भौगोलिक बनावट भी लोगों के दिलो-दिमाग में अंकित हैं। ऐसे घूम-घूमकर बसने वाले कई अन्य बाशिंदे हैं जो पारधियों के साथ इन अलग-अलग स्थानों पर साथ रहे हैं। इन्हें वे काफी प्रेम से याद करते हैं। विस्थापन और पुनर्स्थापन का क्रम अलग-अलग समुदायों के लिए अलग-अलग रहा है। 60 साल की इस यात्रा में 14 पड़ाव रहे हैं। राजीव नगर की उनकी वर्तमान बस्ती को भी स्थायी नहीं माना जा सकता हालांकि लोग यहां 20 वर्षों से अधिक समय से रह रहे हैं।

गांधी नगर की निवासी सरजू बाई बताती है कि वे बैरागढ़ में कहीं ज़्यादा खुश थीं, जहां वे कई बरसों तक रहीं। उन्होंने उस प्लॉट के लिए 15,000 रुपए दिए थे और मकान बनाकर घर बसाया था। किंतु वहां के सिंधी लोग उन्हें बाहर निकालना चाहते थे। उन्हें थोड़ा-सा पैसा देकर गांधीनगर भेज दिया गया और वहां उनके लिए एक प्लॉट चिंहित कर दिया गया। यहां आने के बाद पिछले 12 वर्षों में ज़िंदगी ज़्यादा मुश्किल

हो गई है – पुलिस की ओर से भी और काम के लिहाज़ से भी। उनको खेद है कि पिछली सरकारों और नवाबी राज के समय उन्हें जो कीमती दस्तावेज़ और मान्यताएं मिली थीं वे उनकी पिछली बस्ती में लगी आग में स्वाहा हो गए थे।

बंजारी बस्ती अर्थात नया अंबेडकर नगर सतत असुरक्षा का स्थल रहा है। पहले 2010 में और फिर 2011 में बस्ती में आग लग गई। लोगों का आरोप है कि यह एक सोची-समझी करतूत थी क्योंकि बिल्डरों का एक समूह लोगों पर यह इलाका छोड़ने के लिए लगातार दबाव बना रहा था। हालांकि यह क्षेत्र सरकारी ज़मीन है किंतु बिल्डर लोगों की आंखें इस पर गड़ी हैं और यह बस्ती आसपास की सम्पन्न कॉलोनियों के लोगों की आंख की किरकिरी है। लोगों की ये शंकाएं सच लगती हैं क्योंकि आग लगने के कुछ दिनों बाद जब लोगों ने अपने घर फिर से बना लिए थे, तब नगर निगम द्वारा तोड़फोड़ का अभियान चलाया गया था। एक दिन का भी नोटिस दिए बगैर बुलडोज़र यहां पहुंच गए और लोगों के घर व ज़िंदगियां उजाड़ना शुरू कर दिया। अलबत्ता, अदालती आदेश से यह कार्रवाई रुक गई थी। किंतु तलवार अभी भी लटक रही है क्योंकि लोगों के पास, सारे कानूनों और नीतियों के बावजूद, भूमि स्वामित्व सम्बंधी कोई कागज़ात नहीं हैं।

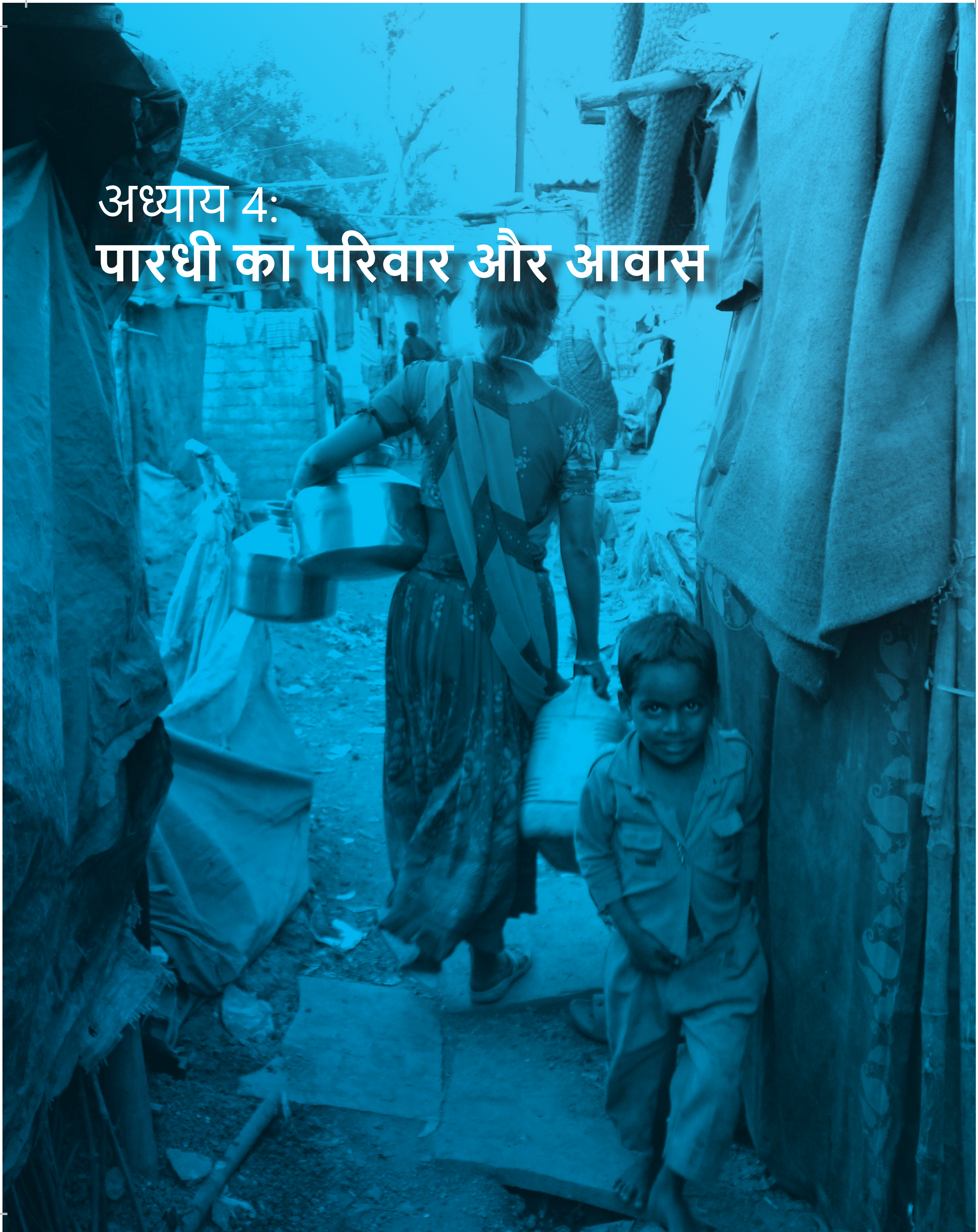
पुश्तैनी गांव के साथ सम्बंध

लोगों का उन गांवों से काफी गहरा सम्बंध है जहां से वे आए हैं। साक्षात्कारों के दौरान तीन व्यक्तियों को छोड़कर बाकी सबने कहा कि वे अपने देवी-देवता की पूजा करने अपने पुश्तैनी गांव गए हैं। साल में एक बार हो, या ज़्यादा| माता पूजन ज़्यादातर ग्यारस के समय होती है| कई लोगों ने बताया कि उनके बुज़ुर्गों की कब्रें या चबूतरे गांव में हैं और वे उन्हीं की खातिर वहां गए थे। वापिस अपने गांव जाने का एक और कारण रिश्तेदारों और परिवार के अन्य लोगों से मिलने जाना भी बताया गया जो ज़मीन की देखभाल के लिए वहां रुक गए हैं। शादियाँ भी ज़्यादातर गाँव में ही होती हैं| एक खास कारण यह बताया गया कि हमारी बचपन की यादें पहले के स्थान से जुड़ी हैं, तो हम वहां से कैसे कट सकते हैं। यह बात उनकी पहले की बस्ती बैरागढ़ के बारे में थी जो शहर में ही है और लोगों को वहां से पुनर्स्थापित किया गया था।

कुछ गांवों के समूह की पारधी आदिवासी पंचायत के हाल में घोषित एक फैसले के अनुसार यह तय किया गया है कि परिवारों को अपने एक सदस्य को हर समय गांव में रखना होगा। घरों पर ताला नहीं लगना चाहिए। यदि वयस्क लोग काम पर जा रहे हैं तो कोई बच्चा वहां रह सकता है, जिसकी देखभाल बाकी रिश्तेदार या समुदाय करेगा। इस आदेश को न मानने पर दंड लगेगा।

हालांकि पारम्परिक तौर से पारधियों को उनके व्यवसाय व काम के चलते घुमक्कड़ माना जाता है, किंतु जहाँ भी वर्तमान पीढ़ी ने ज़्यादा वक्त गुज़ारा है और बचपन से जुड़ी रही है, उस जगह के साथ उनका बंधन व जड़ें महसूस होने लगती हैं। अतः आवास और विशेष गाँव या शहर हर पारधी के जीवन के जुड़ाव का एहम हिस्सा बन गया है|

अध्याय 4:
पारधी का परिवार और आवास



यह खंड लोगों के परिवार की बनावट और वर्तमान आवास व घर में उपलब्ध सुविधाओं के बारे में जानकारी देता है।

परिवार का आकार

पारधी परिवार का आकार औसत परिवार के आकार से काफी बड़ा है। राष्ट्रीय स्तर पर परिवार का औसत आकार 4.9 व्यक्ति प्रति परिवार है। इसकी तुलना में पारधी परिवार में प्रति परिवार 6.7 व्यक्ति हैं। सर्वे में यह भी पाया गया कि आधे से ज़्यादा परिवार संयुक्त परिवार हैं।

परिवार का आकार	परिवारों की संख्या
2-4 सदस्य	53 (24%)
5-6 सदस्य	69 (31%)
7-8 सदस्य	48 (22%)
9-10 सदस्य	28 (12%)
10 से अधिक सदस्य	25 (11%)

परिवार के आकार के अलावा, ध्यान देने की बात यह है कि सारे पारधी अपने समुदाय के निकट ही रहते हैं। तो हो सकता है कि यह पांच परिवारों का समूह हो या 100 परिवारों का। अत्यंत बिरली परिस्थिति में ही ऐसा होता है कि एक इकलौता परिवार अलग-थलग रह रहा हो। लिहाज़ा यहाँ सर्वे में एक-एक अलग-अलग इकाइयों को गिना गया है, किंतु उनके निकटतम पड़ोसी उनके परिजन ही होते हैं। जब वे एक साथ रहते हैं तो अपनेपन और सुरक्षा का एक एहसास होता है और इसीलिए वे बड़े-बड़े समूहों में साथ-साथ रहते पाए जाते हैं। साथ-साथ रहते हुए, वे अपने अस्तित्व बनाये रखने और साथ ही साथ खुशी के लिए एक-दूसरे के परिवार में कई महत्वपूर्ण तरीकों से फैले होते हैं। इस रिपोर्ट में ऐसी कई कहानियों की झलक मिलेगी।

सर्वे में पाया गया कि 221 परिवारों में से 5 परिवार ऐसे थे जिनमें कोई वयस्क पुरुष सदस्य नहीं था जबकि मात्र एक परिवार ऐसा था जिसमें कोई वयस्क महिला नहीं थी। मात्र इस छोटे-से समूह (उपरोक्त 5 परिवारों) को तकनीकी रूप से महिला-मुखिया परिवार कहना उचित नहीं होगा क्योंकि कई अन्य परिस्थितियों में भी पारिवारिक ज़िम्मेदारियां महिलाएं ही उठाती हैं। लेकिन इससे यह निष्कर्ष ज़रूर निकाला जा सकता है कि पारधी समुदाय में पुरुष का बगैर महिला-साथी के रहने की संभावना किसी महिला के अकेले रहने की संभावना से बहुत कम है। कई परिवारों में हमने देखा कि पुरुष किसी अन्य घर में दूसरी पत्नी के साथ रह रहा है किंतु पहली पत्नी अपने बच्चों के साथ अपना गुज़ारा करती है।

मकान

हालांकि अधिकांश लोग अपने वर्तमान स्थान पर काफी लंबे समय, करीब 10-30 सालों, से रह रहे हैं किंतु फिर भी घर की स्थिति देखें, तो अधिकांश लोग जुगाड़ करके ही गुज़ारा कर रहे हैं। सर्वे और अवलोकन से समझ आता है कि प्लास्टिक, मिट्टी और लकड़ी जैसी अस्थायी निर्माण सामग्री का इस्तेमाल आम बात है। लोगों ने बताया कि किसी भी पारधी परिवार के लिए एक बार में मकान बनाना नामुमकिन है। आम तौर पर जब भी लोग अपना घर बेहतर करना शुरू करते हैं, तो उनको झुग्गी को सुधारते-सुधारते 2 से 5 साल लग जाते हैं।

लोगों ने बताया कि वे कुछ समय तक मकान के लिए सामग्री इकट्ठी करते हैं और फिर उसकी मरम्मत करते हैं। जब कभी मिल जाएं, टूटी ईंटें और बोरियां इकट्ठी की जाती हैं। यदि किसी मध्यम वर्गीय कॉलोनी में कोई मकान तोड़ा जा रहा है, तो लोग वहां से टाइल्स और ईंटें ले आते हैं जो ऐसे पक्के घरों के फेंके गए अवशेष होते हैं। यदि लोग चौखट की सामग्री या कोई अन्य कबाड़ा देना चाहें, जो बस्ती के मकान में काम आ सकती हैं, तो ये लोग ऐसी चीज़ों को भी सेकंड हैण्ड के दाम पर खरीद लेते हैं। अन्यथा ऐसी सामग्री, जब भी लोगों के पास पैसा हो, शहर के कबाड़ा बाज़ार से खरीदी जाती है।

सीमित संसाधनों के चलते लोगों को तय करना पड़ता है कि पहले किस हिस्से को मज़बूत बनाया जाए। सबसे पहले छत की मरम्मत की जाती है ताकि बारिश से बचाव हो सके। कई लोगों के लिए तो यह एक सालाना खर्च होता है। इसके बाद फर्श को पक्का किया जाता है और दीवारों का नंबर सबसे आखरी में आता है।

इस पूरे काम को धीरे धीरे क्रम में आगे बढ़ने और पूरा करने का सामर्थ्य जुटाने में परिवार अलग अलग स्तर पर हैं, लेकिन इसके बावजूद, कुल मिलाकर 21 प्रतिशत परिवार मकान में निवेश करने में असमर्थ रहे हैं; वे न तो दीवारों को बेहतर बना पाए हैं, न फर्श और छत में कोई सुधार कर पाए हैं।

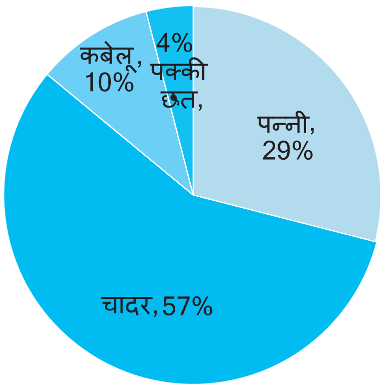
दीवारें

31 प्रतिशत मकानों में फलों के लकड़ी के खोके तोड़कर और/या मिट्टी की दीवारें बनाई गई हैं। 64 प्रतिशत मकानों में ईंट की दीवारें थीं।

छत

10 प्रतिशत घरों की छतों में कवेलू का उपयोग हुआ है। 57.9 प्रतिशत घरों में छत एस्बेस्टस और टीन की चादरों से बनी हैं जबकि 29 प्रतिशत घरों में बांस और कार्डबोर्ड से बनी छत को प्लास्टिक (पोलीथीन) की चादर से ढंका गया है। सारे सर्वेक्षित मकानों में से मात्र 10 (यानी करीब 4 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के मकान की छतें पक्की (कॉन्क्रीट-लिंटेल से बनी) थीं।

छत की सामग्री



फर्श

56 प्रतिशत लोगों के मकानों में सीमेंट का पक्का फर्श था। वे सीमेंट के साथ टाइल्स के टुकड़ों या सिर्फ सीमेंट का इस्तेमाल करते हैं। यह खर्च वास्तव में फायदेमंद होता है क्योंकि तब लोगों को गीले, कीचड़ वाले फर्श पर नहीं चलना पड़ता। और पानी गिरने पर उनके पैर कीचड़ में भी नहीं लिपटते।

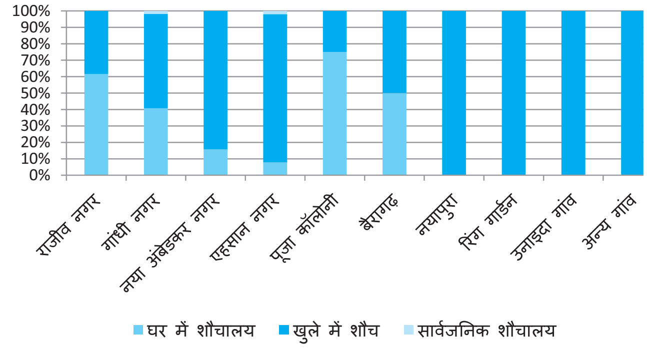
शौचालय व स्वच्छता सुविधाएं

28 प्रतिशत उत्तरदाताओं के घरों में शौचालय था। कुल मिलाकर, हर चार में से तीन परिवार (71 प्रतिशत) खुले में शौच करते हैं। 221 सर्वेक्षित परिवारों में से मात्र 2 ने कहा कि वे सार्वजनिक शौचालय का उपयोग करते हैं।

राजीव नगर, गांधी नगर, एहसान नगर और नया अबेंडकर नगर जैसी बड़ी पारधी बस्तियों में देखा जा सकता है कि जहां राजीव नगर और गांधी नगर के 40-60 प्रतिशत परिवारों को शौचालय उपलब्ध है, वहीं शेष दो बस्तियों में मात्र 20 प्रतिशत घरों में शौचालय है। बिजली और जल प्रदाय जैसी अन्य बुनियादी सुविधाओं के संदर्भ में भी नया अंबेडकर नगर और एहसान नगर के पारधी क्षेत्रों की हालत कमज़ोर है। हालांकि कई परिस्थितियों में ये बस्ती के पंजीकरण के दर्ज़े से जुड़ा होता है, किन्तु यहाँ इसके कारणों का सामान्यीकरण मुश्किल है| ज़मीन के पट्टे की स्थिति इन दो बस्तियों में काफी अलग-अलग है। मौके पर अवलोकन से पता चल जाता है कि बस्ती के अन्य हिस्से पारधी मोहल्ले जितने वंचित नहीं हैं। इसी प्रकार से, ये बस्तियां मुख्य सड़क से काफी हटकर हैं और किसी बड़ी योजना में इन पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

पूजा कॉलोनी एक अनाधिकृत कॉलोनी है लेकिन कच्ची बस्ती नहीं है। यहां 4 में से 3 घरों (75 प्रतिशत) में घर के अंदर ही शौचालय है। इसके विपरीत हम देखते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में हर व्यक्ति खुले में शौच करने

बसाहटों में शौच की जगह



को मजबूर है।

जब लोग नित्य कर्म के लिए बाहर जाते हैं, तो उन्हें काफी अपमान और झिड़कियों का सामना करना पड़ता है। खास तौर से महिलाएं गंदी फबतियों और गुज़रते लोगों की नज़रों से बहुत असुरक्षित और डरा हुआ महसूस करती हैं।

> स्वच्छ भारत अभियान के दौरान लोगों को बहुत परेशान किया गया। सबसे निचले स्तर के ठेका सफाई कामगारों पर ऊपर से और साथी नागरिकों का बहुत दबाव था कि वे टट्टी करने को बैठे व्यक्तियों को खदेड़ें।
>
> बस्तियों में बच्चों को अपने ही समुदाय के लोगों पर बजाने के लिए सीटियां दी गई थीं।
>
> जब म.प्र. सरकार ने भोपाल को सबसे साफ शहर का इनाम दिलवाने की मुहिम शुरू की, तो हालात और भी संगीन हो गए।
>
> शौच गड्ढे के छोटे आकार और पानी की समस्या के चलते स्वच्छ भारत अभियान के तहत बनाए गए शौचालय अपेक्षा के अनुरूप लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं। न्यू अम्बेडकर नगर में घरों में बने शौचालय बहुत कम इस्तमाल होते हैं क्योंकि यहाँ लोग टैंकर से पानी खरीदकर गुज़ारा करते हैं| यही हालत है रिंग गार्डन की पारधी बसाहट की| सभी बने शौचालयों को सामान रखने के लिए इस्तमाल किया जाता है या खंडर हो रहे हैं|

कुछ उत्तरदाताओं ने बताया कि जब युवा लड़कियां शौच के लिए बाहर जाती हैं, तो उन्हें चिंता होती है। खास तौर से राजीव नगर के लोगों ने बताया कि पहले जब वे सुबह-सुबह शौच के लिए जाते थे तो पुलिस उन्हें किसी भी बहाने से उठा लेती थी। आजकल वे डंडा मारते हैं। एक महिला ने बताया कि जब वे टट्टी करने बैठीं तो पुलिस ने बेशर्मी से

उन्हें पिछवाड़े पर मारा। इस संदर्भ में बारिश का मौसम बहुत मुश्किल होता है। "सब जगह गंदगी होती है, मगर हमें जाना पड़ता है।" झाड़ियों में बैठते समय, खास तौर से बरसात के मौसम में, बिच्छू काटने और बिजली का झटका लगने जैसी घटनाएं भी हुई हैं।

बहन बेटी को भी ख़तरा है। जवान लड़कियां खुले में जाती हैं। कहीं के आदमी उठाकर ले जाएं, तो और मुश्किल होगी। क्राइम ब्रांच की पुलिस बहुत परेशान करती है।

पहले तो सड़क पर बैठे नहीं कि उठाकर ले जाती थी और अब करने बैठो तो डंडे से मारती है। जिनके घर में (शौचालय) नहीं है वे तो सड़क पर ही जाएंगे ।

बारिश में तो गन्दगी भी बहुत होती है। जहां जगह मिलती है वहीं बैठ जाते हैं, गन्दगी और बढ़ती है। पर कहां जाएं, मुश्किल होती है।

मात्र दो उत्तरदाताओं ने कहा कि वे सार्वजनिक शौचालय का उपयोग करते हैं। वैसे तो इसकी व्याख्या यह कहकर की जा सकती है कि समुदाय में सार्वजनिक शौचालय की स्वीकार्यता कम है, किंतु वास्तव में परिस्थिति यह है कि क्षेत्र में सार्वजनिक शौचालयों का अभाव है और इसका मतलब यह भी है कि पारधी बस्तियों के आसपास सार्वजनिक शौचालयों की गुणवत्ता घटिया है, हालांकि लोग वहां काफी समय से रह रहे हैं। ज़ाहिर है कि सुविधाओं का नियोजन किए बगैर ही विस्थापन हुए हैं और लोग वर्षों से जैसे-तैसे काम चला रहे हैं।

यह देखा गया है कि बस्ती के सार्वजनिक शौचालयों की तुलना में शहर के 'माध्यम-वर्गीय' क्षेत्रों में बनाए गए सार्वजनिक शौचालय या जिन शौचालयों का उपयोग बाज़ार में आनेवाले मध्यमवर्गीय लोग करते हैं, उनका रख-रखाव बेहतर ढंग से होता है। व्यावसायिक क्षेत्रों के सार्वजनिक शौचालयों में पानी की पर्याप्त सप्लाई होती है और प्रकाश व्यवस्था बेहतर होती है तथा दरवाज़े-कुंडियां वगैरह भी सुरक्षित होते हैं। साफ-सफाई भी नियमित रूप से होती है। यह विडंबना ही है कि जब सार्वजनिक शौचालय के नज़दीक की कोई झुग्गी बस्ती किसी मुख्य सड़क के पास हो या किसी बाज़ार के पास हो, तभी वहां के निवासी वास्तव में इस सार्वजनिक सुविधा से लाभान्वित हो पाते हैं।

बिजली आपूर्ति

जहां हर पांच में से 2 (38.4 प्रतिशत) उत्तरदाता के घर पर मीटरशुदा कनेक्शन था, वहीं हर दस में से एक (10.8 प्रतिशत) परिवार बिजली के बगैर ही काम चला रहा था। लगभग आधे परिवार सीधे बिजली की लाइन से बिजली लेते हैं।

जो परिवार तथाकथित 'बिजली चोरी' का सहारा लेते हैं, उनमें से कई के पास पहले मीटरशुदा बिजली कनेक्शन थे। किंतु यह जायज़ रास्ता निभ नहीं पाया क्योंकि लोगों के बिजली के बिलों में बेतुकी और भारी वृद्धि होती गई, जिनका भुगतान करना असंभव था। वर्तमान हालात में, लोग इस व्यवस्था (मुख्य पॉवर लाइन से बिजली लेना) के जोखिमों के साथ काम चला रहे हैं। कई बस्तियों में लोगों ने बताया कि उनके पास मात्र एक बल्ब, एक पंखा और एक टीवी है किंतु उनका बिजली का बिल हज़ारों में पहुंच गया है। राजीव नगर में एक बिल तो 11,000 रुपए का आया था और एक ब्रजेश नामक व्यक्ति के घर का बिजली बिल 68,000 रुपए का आया था। एहसान नगर का अभिषेक तो भारी-भरकम बिजली बिलों से इतना त्रस्त हो गया कि उसने कनेक्शन ही काट दिया। अभिषेक का कहना है कि "अगले बिजली बिल के तनाव में जीने से तो अंधेरे में रहना बेहतर है।"

10.8 प्रतिशत घरों में बिजली न होना इस बात का प्रमाण है कि पारधी समुदाय के कुछ परिवार कितनी कमज़ोर स्थिति में जी रहे हैं।

प्रांत की राजधानी में बिजली सप्लाई की हालत से नज़र आता है कि सरकार की निजीकरण की नीति असफल रही है। मुफ्त एक बत्ती कनेक्शन में लोगों का कामकाज बेहतर चल रहा था। कई लोगों ने खुद होकर मीटर लगवाए हैं किंतु प्रति युनिट बिजली की कीमत (मध्य प्रदेश में बिजली दिल्ली से 300 प्रतिशत और छत्तीसगढ़ से 200 प्रतिशत महंगी है), बिलों में धांधली ऐसी चीज़ें हैं जिनसे निपटना गरीब समुदायों के लिए नामुमकिन है।

जल प्रदाय

कुल मिलाकर 61 प्रतिशत यानी हर पांच में से तीन घरों की पानी तक पहुंच है। 28.9 प्रतिशत परिवार सार्वजनिक नल का उपयोग करते हैं, 18 प्रतिशत परिवार हैण्ड पंप के भरोसे हैं और 14 प्रतिशत ने बताया कि उनके घर में नल लगा है।

राजीव नगर, जो अन्य बस्तियों के मुकाबले ज़्यादा केंद्रीय जगह पर बसी है, के उत्तरदाताओं को ठीक-ठाक जल प्रदाय उपलब्ध है – सार्विजनिक नल लगे हैं और हैण्ड पंप भी बस्ती में ही है। किंतु एहसान नगर और बंजारी बस्ती में जल प्रदाय नहीं होने के कारण काफी समस्या है। उन्हें प्रति बाल्टी एक निश्चित दाम चुकाकर पानी ख़रीदना पड़ता है। रिंग रोड की बस्ती में तीन परिवार मिलकर 300 रुपए का टैंकर मंगवाते हैं और आपस में साझा करते हैं| यह 2-3 दिन चल जाता है| यह पानी नहाने-धोने के इस्तेमाल किया जाता है और सुबह के वक़्त पास में स्थित पक्की कॉलोनी में पीने के पानी को भरने की इजाज़त लेते हैं|

लोगों का दैनिक जीवन जल प्रदाय से नियंत्रित होता है। जिस दिन पानी आता है (अमूमन एक दिन छोड़कर), उस दिन बच्चे स्कूल नहीं जाते और अपने अन्य काम छोड़कर पानी की कतार में खड़े अपनी बारी का इन्तज़ार करते हैं। इसमें लगभग एक घंटा ज़ाया होता है। महिलाएं अपने

काम और बस्ती के बाहर जाने की योजना जल प्रदाय के अनुसार बनाती हैं। पानी की ज़रूरत के प्रबंधन में समय लगने की वजह से लोगों को कई अवसरों और संभावनाओं से हाथ धोना पड़ता है।

बंजारी बस्ती में लोग पानी के लिए टैंकर पर निर्भर हैं। हर परिवार को 4 डब्बे पानी मिलता है। नहाने, धोने, खाना पकाने जैसी ज़रूरतों के चलते किसी बड़े परिवार के लिए इतने से पानी में काम चलाना मुश्किल होता है।

उदाहरण के लिए, गांधी नगर में पानी एक दिन छोड़कर एक दिन आता है। तो लोग उसी के हिसाब से योजना बनाते हैं। अलबत्ता, ऐसा भी होता है और कई बार होता है कि जिस दिन पानी आना चाहिए उस दिन नहीं आता है और अगले दिन आ जाता है। इसकी वजह से पानी की किल्लत तो हो ही जाती है, लोगों ने उस दिन के लिए जो भी योजना बनाई थी वह भी बेपटरी हो जाती है।

ईंधन का उपयोग

221 में से 13 उत्तरदाताओं को छोड़कर सभी लोग ईंधन के लिए लकड़ी या कंडें जैसी सामग्री का इस्तमाल कर रहे हैं| कभी मिल जाए तो लकड़ी के साथ पन्नी, बोरी, लकड़ी का भूरा भी आग जलाने में इस्तमाल कर लेते हैं| लोग पहले कचरा बीनने आते-जाते लकड़ी इकट्ठी कर लेते थे या इसके लिए खास तौर से जाते थे किंतु अब ज़्यादा से ज़्यादा जगहें पक्की होते जाने के कारण लकड़ी इकट्ठी करने के लिए तय की जाने वाली दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। इसलिए उन्हें कई बार लकड़ी दुकानों से खरीदना पड़ती है। आम तौर पर एक परिवार रोज़ाना 10 रुपए की लकड़ी खरीदता है।

जब से सरकार गैस सिलेंडर को प्रोत्साहन देने लगी है, करीब 10 प्रतिशत परिवार खाना पकाने के लिए गैस का उपयोग करने लगे हैं। अलबत्ता, गैस सिलेंडर को रीफिल करवाना कठिन होता है, और एक बार में बहुत पैसा खर्च करना पड़ता है। लोगों को हर रोज़ या हर सप्ताह लकड़ी खरीदने के लिए थोड़ी सी राशि खर्च करना अधिक आसान लगता है क्योंकि गैस सिलेंडर भरवाने के लिए सैकड़ों रुपए की ज़रूरत होती है। कई लोग इन दोनों तरह के ईंधन का उपयोग करते हैं।

मकान के दस्तावेज

मकान के स्वामित्व के संदर्भ में 30 प्रतिशत लोगों के पास पंजीकरण के कागज़ात है। लगभग 36 प्रतिशत के पास अस्थायी पट्टा है। हर बस्ती में परिस्थिति अलग-अलग है। जिन लोगों के पास पट्टे हैं वे राजीव नगर और गंधी नगर से हैं किंतु इन्हीं क्षेत्रों में ऐसे लोग भी हैं जिनके पास इस तरह के अधिकार के कोई कागज़ात नहीं हैं। इसी प्रकार से, जिन लोगों ने बताया कि उनके पास रजिस्ट्री है, वे अधिकांश एहसान नगर से थे किंतु ऐसे कुछ परिवार गांधी नगर में भी थे और कुछ ऐसे परिवार भी थे जो बड़ी बसाहटों से दूर रहते हैं। किंतु इन स्थानों में भी ऐसे लोग हैं जिनके पास कोई दस्तावेज़ नहीं हैं। इस पैटर्न से तो लगता है कि प्राथमिक बस्ती से बाहर भी लोग बसते हैं और जब लोगों को नई जगह पुनर्स्थापित किया जाता है तो सारे लोग उपयुक्त कागज़ात हासिल नहीं कर पाते हैं।

अधिकांश लोग सरकारी ज़मीन पर रह रहे हैं, फिर भी 26.2 प्रतिशत के पास ज़मीन संबंधी कोई भी कागज़ात नहीं थे। हालांकि ऐसे परिवार मुख्य रूप से नया अंबेडकर नगर में हैं किंतु अन्य सर्वेक्षित बस्तियों में भी ऐसे परिवार हैं जिनके पास कोई कागज़ात नहीं हैं। मात्र 2 लोगों ने बताया कि वे किराए के मकान में रहते हैं जबकि 14 (6 प्रतिशत) किसी 'अन्य विकल्प' का उपयोग कर रहे हैं।

वैसे तो ये हालात भोपाल की बस्तियों में आम निराशाजनक परिस्थितियों के द्योतक हैं। किंतु इनमें से कुछ पहलू शहर की अन्य बस्तियों की अपेक्षा पारधी बस्तियों में खास तौर से बदतर हैं और दर्शाते हैं कि पारधी जैसे कमज़ोर समुदायों की हालत कितनी सोचनीय है।

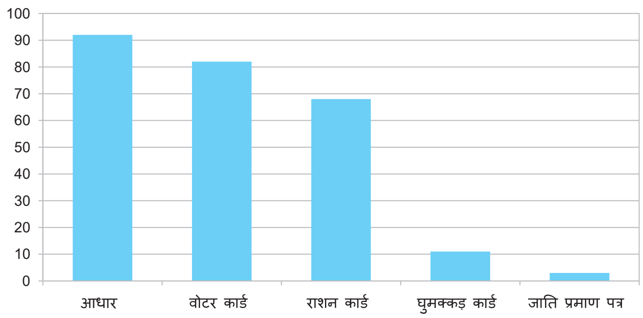


अध्याय 5:
अधिकारों से जुड़े कागज़ी सबूत

आज आम नागरिक नुमा किसी भी योजना या सुविधा का फायदा उठाने के लिए, कुछ मूल दस्तावेजों की आवश्यकता होती है| पारधी समाज किन सुविधाओं तक पहुँच पाया है या पहुँच पाएगा, उसके लिए इस सर्वे में लोगों के पास उपलब्ध दस्तावेजों की जानकारी लेने की कोशिश की गयी|

पारधी समुदाय के पास कौन-से दस्तावेज़ है और कौन-से नहीं, इस बारे में एक दिलचस्प बात समझ में आती है| हालांकि आधार कार्ड का लाभ सीधा किसी भी योजना या सुविधा से नहीं जुड़ता, लगभग 92% घरों में किसी ना किसी के पास आधार कार्ड है। 82% से ज़्यादा परिवारों में लोगों के पास वोटर कार्ड है। लेकिन उनकी सबसे बड़ी ज़रूरत– राशन कार्ड जो अन्न सुरक्षा से जुड़ा हुआ है, सिर्फ 68% परिवारों के पास है। कुल मिलाकर 32% परिवारों के पास नीला कार्ड और 34% के पास पीला कार्ड है। सिर्फ 3 परिवारों के पास सफ़ेद राशन कार्ड है। इसके आगे यह भी पाया गया कि पैन कार्ड 19 परिवारों (9%) के किसी सदस्य के पास है।

परिवारों में उपलब्ध दस्तावेज (प्रतिशत)



सभी जगह यह भी समझ आया कि लोग दस्तावेजों का बहुत महत्त्व रखते हैं; सभी कागज़ी सबूत बनाने के लिए कोशिश करी है, पैसे भी दिये हैं लेकिन बन नहीं पाए हैं| यहाँ तक के घर में सबसे ज़्यादा संभाली गई चीज़ों में लोगों के कागज़ाद हैं, यहाँ तक कि एक खाली आवेदन-पत्र भी लोग सम्भाल कर रखते हैं|

राशन कार्ड की स्थिति

68% परिवारों के पास राशन कार्ड है, हालांकि सभी लोगों की हालत स्पष्टतः गरीबी में थी| बाकि लोगों ने बनवाने के प्रयास तो किये हैं, लेकिन बन नहीं पाए हैं| साथ ही ऐसे भी कई परिवार थे जहाँ लड़कों की शादी हो गई है, लेकिन नए परिवार का अलग राशन कार्ड नहीं बन पाया है| राजीव नगर बस्ती के 18 वर्षीय जोनी की शादी हुई तो उसने कोशिश की थी। लेकिन पैसे देने के बावजूद उसका राशन कार्ड नहीं बन पाया। परिवारों ने कहा कि उनके पास राशन कार्ड है, उनमें से बहुत सारे लोगों ने यह कार्ड किसी न किसी एजेंट नुमा इंसान को पैसे देकर बनवाया है।

जाति प्रमाण पत्र – घुम्मकड़ और अनुसूचित जनजाति

समुदाय की पहचान दिखाने वाले दस्तावेज, जैसे घुमक्कड़ जाति प्रमाण पत्र, 11% लोगों के पास हैं, लेकिन लोगों ने यह भी जोड़ा कि उनको कोई फायदा नहीं हुआ है। सिर्फ 7 लोगों (3%) ने कहा कि कुछ फायदा हुआ है; तीन को बच्चे के स्कूल में दाखिले, एक को बच्चे के वजीफे और बाकि लोगों को दिल्ली जाने के लिए यह घुमक्कड़ जाति प्रमाण पत्र काम में आया। (पारधी को अनुसूचित जनजाति में जोड़ने के लिए किसी संगठन ने दिल्ली में जुलूस निकाला था, इसमें शामिल होने के लिए घुमक्कड़ का प्रमाण पत्र काम आया था।) गाँधी नगर बस्ती में घुमक्कड़ का प्रमाण पत्र बनवाने के लिए भी कई लोगों ने दो-ढाई हज़ार रुपये दिए हैं।

3.2% लोगों के पास पुराने जाति प्रमाण पत्र हैं, लेकिन उसका कोई लाभ नहीं है क्योंकि मध्य प्रदेश के भोपाल, सीहोर और रायसेन ज़िलों में सन् 2002 से पारधियों को अनुसूचित जनजाति (एस.टी.) की सूची से निकाल दिया गया है।

जन्म प्रमाण पत्र

बहुत सारे घरों में सबसे छोटे बच्चे के जन्म का पंजीकरण नहीं हुआ है। सिर्फ 56% घरों में ही घर के सबसे छोटे बच्चे का जन्म प्रमाण पत्र बन पाया है। इसके कुछ कारण हैं, प्रमुखतः अभी भी ज़्यादातर बच्चे अस्पताल में नहीं, घर में ही पैदा होते हैं। भोपाल में या अन्य शहर में भी हों तो पारधी परिवार सरकारी अस्पताल में कम ही जाते; सरकारी अस्पताल पर उनका विश्वास नहीं बन पाया है। प्राइवेट अस्पताल में डिलीवरी करके एकाध दिन में घर वापिस आते हैं। इन सभी परिस्थितियों में उनके जन्म का पंजीकरण नहीं हो पाता। इसके बाद शासकीय दफ्तर में जन्म प्रमाण पात्र बनवाना टल जाता है, लेकिन फिर भी यह देखने को मिला कि कुछ परिवारों में बच्चों के जन्म प्रमाण पात्र बच्चों के बड़े होने पर बनवाए गए हैं| यह भी पैसे देकर बनवाए जाते हैं और कई बार तारीखों में गड़बड़ होती है| एक घर में देखने को मिला कि एक ही औरत के दो बच्चों की जन्म-तिथि आठ महीने के अन्तराल पर लिखी गई थी| पुलिस के साथ लगातार झड़प होने के चलते, बच्चों की भी, जन्म प्रमाण पात्र उपयोगी होता है ताकि बच्चों की नाबालिग उम्र साबित की जा सके| जन्म प्रमाण पत्र नहीं होने के चलते आधार कार्ड पर भी बच्चों के जन्म-तारीख 1-जनवरी दिखाई जाती है|

बैंक खाता

लगभग 83% परिवार के पास बैंक अकाउंट है, लेकिन 55% से ज़्यादा परिवार बैंक अकाउंट का ज़्यादा उपयोग नहीं करते। ज़्यादातर परिवार पन्नी बीनने के काम पर गुज़ारा करते हैं, जो ऐसा काम है कि आज कमाओ, आज खाओ।

सिर्फ जो बाहर जाते हैं और कंगन-चूड़ी का धंधा करते हैं, वे थोड़ा बहुत बचा पाते हैं और बैंक अकाउंट का कुछ उपयोग करते हैं। जिन परिवारों के पास पैसा होता है, वे बहुत बार बैंक में रखने की बजाय उधार देना पसंद करते हैं।

टिप्पणी

कोई न कोई सरकारी योजना बनती रहती है। बहुत बार किसी दस्तावेज का कोई फायदा नहीं होता, पर लोगों को हाशिये पर रहते इतनी असुरक्षा महसूस होती है कि किसी भी तिनके का सहारा लेना उन्हें ज़रूरी लगता है। जब भी कोई ऐसी योजना लाई जाती है तो सब लोग उसके लिए दस्तावेज तैयार करने के प्रयास में जुड़ जाते है।

पारधी समुदाय में बहुत से कारणों से जो अस्थिरता और असुरक्षा है, उसके कारण शायद दस्तावेज की अहमियत उन्हें ज़्यादा महसूस होती है। बहुत बार कुछ फॉर्म भरना है या कुछ दस्तावेज तैयार हो रहे हैं, तो लोगों में एक हलचल दिखाई देती है। चूंकि काफी तादाद में लोग लिखना-पढ़ना नहीं जानते, इस वजह से बेचैनी और छटपटाहट और भी बढ़ जाती है।

अध्याय 6:
शिक्षा की स्थिति



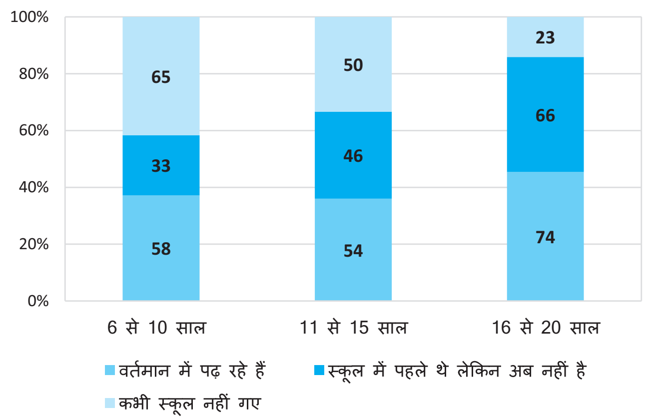
परिवार के सभी स्कूल के उम्र लायक बच्चों और वयस्कों (अर्थात 6 से लेकर 20 वर्ष) की शिक्षा की स्थिति के बारे में सवाल पूछे गए थे। ऐसा यह मानकर किया गया था कि शायद लोगों को स्कूली शिक्षा पूरी करने में औसत से ज़्यादा समय लग सकता है।

जिन 221 परिवारों का अध्ययन किया गया, उनमें इस उम्र समूह के 469 लोग थे। सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त जानकारी के अनुसार, इनमें से 186 (39.6 प्रतिशत) कभी स्कूल नहीं गए थे, 145 बच्चों (30.9 प्रतिशत) ने स्कूल के प्रथम वर्ष से लेकर 10वीं कक्षा के बीच विभिन्न मुकामों पर स्कूल छोड़ दिया था (इस बारे में हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।) सिर्फ 138 बच्चे (29.4 प्रतिशत) ही सर्वेक्षण के समय स्कूल जा रहे थे।

पढ़ाई की स्थिति	पढ़ रहे हैं	पढाई छोड़ दी	कभी नहीं पढ़े
संख्या (469 में से)	138	145	186
कुल में से प्रतिशत	29.4%	30.9%	39.6%

पांच-पांच वर्ष के उम्र समूहों में बांटकर देखें तो इन तीनों समूहों में बच्चों की संख्या में बहुत अंतर नहीं है। इन अलग-अलग उम्र समूहों में शैक्षिक सूचकांकों से पता चलता है कि शिक्षा व्यवस्था से बाहर निकल जाने की महत्वपूर्ण अवस्थाएं क्या हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि पारधी समुदाय में औपचारिक शिक्षा की पैठ कितनी है (या नहीं है)।

6 से 20 वर्ष के उम्र के लोगों की पढ़ाई की स्थिति



6-10 वर्ष आयु समूह – यह बात चौंकाने वाली है कि इस कम उम्र वाले समूह, यानी 6-10 वर्ष में भी 5 में से मात्र 2 बच्चे (41.7 प्रतिशत) ही स्कूल जा रहे हैं। यह तो बच्चों की हालिया पीढ़ी है जिसे स्कूल में होना चाहिए। ऐसे बच्चों की संख्या बहुत अधिक है जो स्कूल से बाहर हैं या कभी स्कूल में दाखिल ही नहीं हुए हैं। लगभग 37 प्रतिशत बच्चों का कभी स्कूल में दाखिला नहीं हुआ है जबकि 21 प्रतिशत बच्चों ने स्कूल छोड़ दिया है। अर्थात इस आयु समूह के 62 प्रतिशत बच्चे स्कूली तंत्र के हिस्से रहे हैं मगर दाखिला लेने वाले बच्चों में से एक-तिहाई स्कूल छोड़ चुके हैं। इस उम्र में स्कूल-त्याग का मतलब है कि आज भी, शिक्षा के अधिकार के ज़माने में जब अनिवार्य शिक्षा एक संवैधानिक मापदंड है, तब सबसे छोटी कक्षाओं में भी काफी बच्चे स्कूलों में टिक नहीं पा रहे है।

11-15 वर्ष आयु समूह – शिक्षा का अधिकार कानून 6-14 वर्ष तक लागू होता है, अत: यह लाज़मी है कि इस आयु समूह पर खास ध्यान दिया जाए। आंकड़ों से लगभग वैसी ही स्थिति सामने आती है जैसी कि पहले दो समूहों के मामले में दिखी थी। अंतर सिर्फ इतना है कि इन वर्षों में कई और बच्चे स्कूल छोड़ चुके हैं। तो 6-10 वर्ष समूह के समान इस आयु समूह में भी ऐसे बच्चे 64 प्रतिशत थे जो कभी ना कभी स्कूल गए हैं किंतु स्कूल त्याग की दर इस समूह में कहीं ज़्यादा है – लगभग हर दूसरा बच्चा (48 प्रतिशत) स्कूल छोड़ चुका है। इस समूह के 33 प्रतिशत बच्चे स्कूल जा रहे हैं।

16-20 वर्ष आयु समूह – इस समूह में स्कूल जाने वाले बच्चों और युवाओं की संख्या में और गिरावट दिखती है और उन बच्चों की संख्या बढ़ती है जो कभी स्कूल नहीं गए। इस उम्र के मात्र 14 प्रतिशत बच्चे वर्तमान में स्कूल जा रहे हैं और 45 प्रतिशत का कभी दाखिला ही नहीं हुआ।

उपरोक्त आंकड़ों से पता चलता है कि हालांकि समुदाय पिछले दस वर्षों में 'औपचारिक स्कूली शिक्षा' में पहुंचने लगा है और 16-20 वर्ष आयु समूह के स्कूल में कभी दाखिला न लेने वालों का जो प्रतिशत 45 था वह 6-15 वर्ष आयु समूह में घटकर 37 प्रतिशत रह गया है। अलबत्ता दाखिले के आंकड़े में यह कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं है क्योंकि यह कमोबेश एक शहरी सैंपल है और यहां स्कूल तक भौगोलिक पहुंच शायद उतना महत्वपूर्ण कारक नहीं है। अध्ययन में शामिल एकमात्र बस्ती एहसान नगर थी जहां आसपास कोई सरकारी स्कूल नहीं है। इसके अलावा, आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि स्कूली शिक्षा का अनुभव उतना सकारात्मक नहीं है और शाला-त्याग की दर काफी अधिक है। अर्थात स्कूली शिक्षा ने गुणवत्ता और पहुंच की दृष्टि से समुदाय में जड़ें नहीं जमाई हैं। यदि चार में से मात्र एक बच्चा स्कूल जा रहा हो, तो लगता है कि समुदाय में प्रचलित बाल श्रम और कम उम्र में शादी की सांस्कृतिक परंपरा में कोई बदलाव नहीं आ रहे है।

निम्नांकित तालिका में शिक्षा की स्थिति को जेंडर के नज़रिए से प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो शिक्षा के मापदंड पूरे पारधी समुदाय के लिए बहुत ही ख़राब और कमज़ोर हालत दर्शाते हैं, लेकिन आंकड़ों से लड़कियों और महिलाओं की स्थिति खतरनाक नज़र आती है।

		6-10 वर्ष			11-15 वर्ष			16-20 वर्ष			योग		
		लड़कियां	लड़के	योग	लड़कियां	लड़के	योग	लड़कियां	लड़के	योग	लड़कियां	लड़के	योग
वर्तमान में पढ़ रहे हैं	संख्या	23	42	65	16	34	50	0	23	23	46	118	164
	उम्र समूह के कुल बच्चों में से प्रतिशत	34.8	46.7	41.7	23.5	41.4	33.3		26.4	14.1	16.5	34.2	26.3
अब स्कूल में नहीं हैं	संख्या	14	19	33	25	21	46	23	43	66	62	83	145
	उम्र समूह के कुल बच्चों में से प्रतिशत	21.2	21.1	21.1	36.8	25.6	30.7	30.2	49.4	40.5	79.5	24.1	23.3
कभी स्कूल नहीं गए	संख्या	29	29	58	27	27	54	53	21	74	170	144	314
	उम्र समूह के कुल बच्चों में से प्रतिशत	43.9	32.2	37.2	39.7	32.9	36	69.7	24.1	45.4	61.1	41.7	50.4
योग	संख्या	66	90	156	68	82	150	76	87	163	210	259	469
	उम्र समूह के कुल बच्चों में से प्रतिशत												

इन आंकड़ों का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कुल मिलाकर सर्वेक्षित परिवारों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या कम है। 259 लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या मात्र 210 थी। यह एक उल्लेखनीय अंतर है किंतु समुदाय में ऐसे विषम लिंग अनुपात की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं है। इस आंकड़े को अन्य समुदायों में प्रचलित कन्या भ्रूण/शिशु हत्या की प्रथा से जोड़कर देखना सही नहीं होगा क्योंकि पारधी लोग लड़कियों को कई अन्य कारणों से मूल्यवान मानते हैं। समुदाय के साथ इस मुद्दे पर बातचीत से भी कोई समुचित व्याख्या नहीं उभरी। इसकी आगे छानबीन करने की आवश्यकता है। अत: वर्तमान चर्चा में हम लड़कियों के आंकड़ों को लड़कों की तुलना में भी देखेंगे और एक ही जेंडर के अंतर्गत अनुपातों पर भी विचार करेंगे।

इन आंकड़ों से उभर रहे कुछ तथ्य इस प्रकार हैं –

कभी स्कूल में दाखिला नहीं हुआ – जैसा कि पहले बताया गया था, स्कूल में कभी दाखिला न लेने वालों की संख्या सभी आयु समूहों में काफी अधिक है। अलबत्ता, यदि इसे जेंडर के लिहाज़ से देखें, तो 16-20 वर्ष आयु समूह में 74 ऐसे लोगों का पता चला जो कभी स्कूल में दाखिल नहीं हुए थे। इनमें से 71.6 प्रतिशत लड़कियां थीं। इसका मतलब है कि कभी स्कूल में दाखिल न होने वाले 4 पारधी बच्चों में से 3 लड़कियां होती हैं। 16-20 वर्ष की लड़कियों में से 70 प्रतिशत कभी स्कूल नहीं गई थीं, जबकि लड़कों के मामले में यह आंकड़ा 24 प्रतिशत है। आज भी उन बच्चों का अनुपात काफी अधिक है जो स्कूल में दाखिल नहीं हुए हैं, किंतु लड़के-लड़कियों के बीच अंतर कम हुआ है।

6-15 वर्ष आयु समूह में 41.8 प्रतिशत लड़कियों का स्कूल में कभी दाखिला नहीं हुआ था। लड़कों के मामले में यह आंकड़ा 32.6 प्रतिशत था। यह समुदाय में लड़कियों और लड़कों को स्कूल भेजने की इच्छा का द्योतक है। हालांकि समुदाय में जेंडर सम्बंधी मानकों का काफी असर है किंतु ऐसा लगता है कि यही एकमात्र कारक नहीं है। लड़कों के दाखिले में (ऋणात्मक) उतार-चढ़ाव शायद शहरों में बेदखल होने तथा पारधियों को 2002 में 'अनुसूचित जनजातियों' (एसटी) की श्रेणी से बाहर कर दिए जाने का परिणाम हो सकता है।

वर्तमान में स्कूल में हैं - सारे आयु समूहों में लड़कियों की अपेक्षा ज़्यादा लड़के पढ़ते दिखते हैं। 6-20 वर्ष आयु समूह के उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि जो 138 बच्चे व किशोर स्कूल जा रहे हैं, उनमें से मात्र 28 प्रतिशत लड़कियां हैं। 16-20 वर्ष आयु समूह में एक भी लड़की स्कूल में नहीं थी।

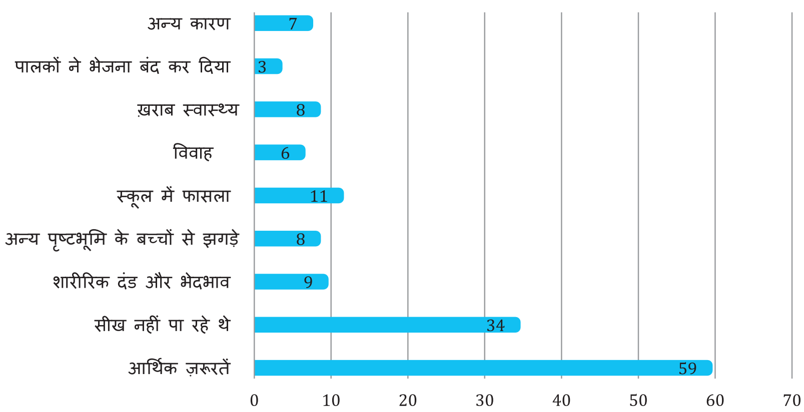
छोटे बच्चों (6 से 10 वर्ष) में भी लड़कियों की शिक्षा का आंकड़ा निराशाजनक स्थिति दिखाता है| इस उम्र में पढने वाले बच्चों में से लड़कियां केवल 35 प्रतिशत थी| अलग-अलग उम्र समूह में देखें तो 11 से 15 वर्ष की बच्चियों में केवल 23 प्रतिशत पढ़ रही हैं, और 6 से 10 वर्ष में 35 प्रतिशत लड़कियां स्कूल में हैं| इन आकड़ों से पितृसत्तात्मक परिस्थिति दस या बीस साल पहले की पीढ़ी में ही नहीं, वर्तमान पीढ़ी में भी स्पष्ट दिख रही है| इसका कुछ सम्बंध स्कूल के माहौल से होगा, और कुछ समुदाय से उभरा होगा|

स्कूल छोड़ना - यह भी दिख रहा है कि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, लड़कों के मुकाबले लड़कियों के स्कूल छोड़ने की संभावना बढ़ती जाती है| 6-10 वर्ष आयु समूह में लड़कियों और लड़कों की स्कूल छोड़ने की दर लगभग बराबर थी (21 प्रतिशत)। किंतु अगले आयु समूह (11-15 वर्ष) में लड़कियों की स्कूल छोड़ने की दर (37 प्रतिशत) लड़कों (26 प्रतिशत) से कहीं ज़्यादा थी। ज़ाहिर है, काम का दबाव और ऐसे उद्देश्यों (जो लड़कियों के क्षितिज को विस्तार देंगे) के लिए गतिशीलता पर पाबंदियां किशोरावस्था में भूमिका निभाने लगते हैं।

स्कूल छोड़ने के संदर्भ में एक और दृष्टिकोण से भी विचार किया गया। यह देखा गया कि स्कूल छोड़ने वालों ने आखरी कक्षा कौन-सी पढ़ी थी।

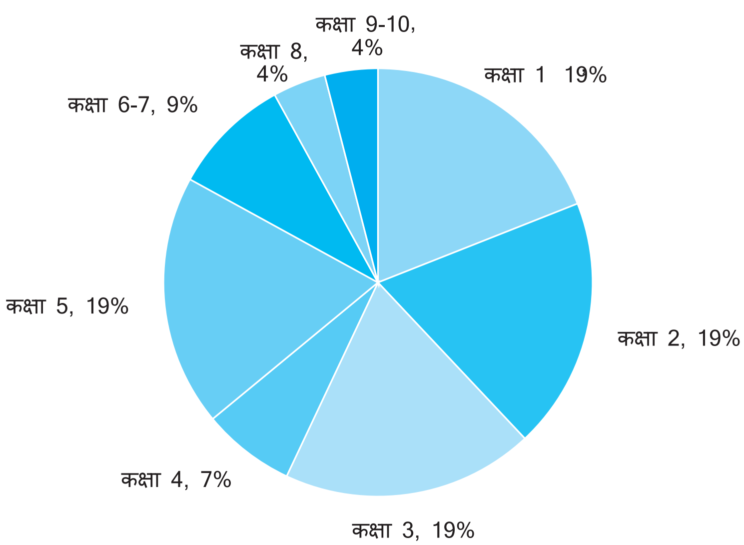
145 बच्चों और युवाओं ने स्कूल छोड़ा था। इनमें से 83 प्रतिशत ने कक्षा 5 से पहले स्कूल छोड़ा जबकि 13 प्रतिशत ने कक्षा 8 से पहले स्कूल छोड़ दिया था। इससे पता चलता है कि कितने कम बच्चे मिडिल स्कूल तक पहुंच रहे हैं और वहां टिक रहे हैं।

स्कूल छोड़ने के कारण



स्कूल छोड़ने का एक प्रकरण - जब बच्चे पढ़ रहे थे, तब कमाने वाले एक-दो लोग होने होते थे।

पढ़ाई छूटने की कक्षा



यदि बच्चा शैक्षणिक प्रक्रिया से कोई हुनर विकसित करने के लिए पर्याप्त समय तक स्कूल में नहीं टिक पाता तो स्कूल में दाखिला उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं ला सकता।

वास्तविक प्रकरण बताते हैं कि 5 लड़कों ने कक्षा 10 और इनमें से तीन लड़कों ने कक्षा 12 पूरी की है। एक ही लड़की है जिसने कक्षा 10 पूरी की है।

पारिवारिक परिस्थितियां - स्कूल छोड़ने के कारणों में आर्थिक कारण सबसे ऊपर थे। लड़कियों और लड़कों दोनों ने पारिवारिक आमदनी में सहयोग देने की ज़रूरत बताई। एक छोटी संख्या ने फीस अदा करने में असमर्थता की बात भी कही, जिसे इसी श्रेणी में रखा गया है। दिलचस्प बात यह थी कि इस समस्या को पालकों के दबाव के रूप में नहीं बल्कि घर पर एक सामूहिक दिक्कत के रूप में देखा गया था। तीन जवाब पालकों द्वारा बच्चे को स्कूल भेजने से इन्कार करने के रूप में थे।

सुरक्षा के उपायों की अनुपस्थिति इस बात से भी ज़ाहिर होती है कि 8 स्कूल-त्यागियों के मामले में कारण अस्वस्थता से सम्बंधित थे। पालकों की बार-बार की अस्वस्थता, दुर्घटना या मृत्यु का बच्चे के जीवन सीधा असर पड़ता है।

जल्दी विवाह भी बच्चे के स्कूल में न टिक पाने में भूमिका निभाता है। जिन 6 लोगों ने यह कारण बताया, उनमें से 5 लड़के थे और मात्र एक लड़की थी। यह समझा जा सकता है कि जल्दी शादी होना पारधी लड़कियों के जीवन की एक हकीकत है किंतु उनकी शिक्षा पर अन्य कारकों का भी असर होता है और वह शादी की औसत उम्र से पहले ही शिक्षा तंत्र से बाहर हो जाती है।

शिक्षा तंत्र की खामियां

अध्ययन से पता चलता है कि स्कूल छोड़ने के कई मामलों में शिक्षा तंत्र की खामियां या नाकामियां भी ज़िम्मेदार होती हैं।

बड़ी संख्या में शाला-त्याग शिक्षा तंत्र के प्रति मोहभंग और निराशा की वजह से हुआ है। 'कुछ समझ में नहीं आ रहा था', 'सीख नहीं पा रहे थे', 'दिल ही नहीं लगता था', 'कुछ काम नहीं आ रही थी, न पढ़ाई में बढ़त थी न पैसों में, अच्छा नहीं लगता था' जैसे जवाबों को इसी श्रेणी में रखा गया है। असफल होने के कारण स्कूल छोड़ने सम्बंधी दो जवाबों को भी इसी श्रेणी में शामिल किया गया है।

कई बच्चों, खासकर एहसान नगर के बच्चों ने दूरी की वजह से स्कूल छोड़ा है। दो जवाबों में स्कूल जाते समय दुर्घटना की बात भी कही गई है।

लगभग 12 प्रतिशत शाला-त्याग के मामले स्कूल में शारीरिक या भावनात्मक दुर्व्यवहार के रूप में मिलने वाली नकारात्मकता से भी जुड़े हैं। भिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के बच्चों के साथ झगड़े और शिक्षक द्वारा पिटाई स्कूल छोड़ने के कारण बताए गए हैं। यह बताया गया कि 'मेडम पारधी बोलकर चिढ़ाती थी'। इस बारे में बच्चों के साथ सामूहिक चर्चा से और गुणात्मक जानकारी उभर सकती है।

लगभग दो-तिहाई (93) बच्चों ने सरकारी स्कूल छोड़ा है जबकि करीब एक-तिहाई बच्चों ने बताया कि स्कूल छोड़ने से पहले वे किसी निजी स्कूल में जा रहे थे। आंकड़े बताते हैं कि पारधी समुदाय के काफी बच्चे निजी स्कूलों में भी दाखिल किए गए थे, और शाला त्याग दोनों किस्म के स्कूलों से हुआ है।

इस मामले में ध्यान में रखने की बात यह है कि यह एक खुला प्रश्न था और सबसे प्रचलित कारण ही सामने आए हैं। जवाबों से पता चलता है कि यदि हम चाहते हैं कि इस निहायत दुर्बल (जोखिमग्रस्त) समुदाय के बच्चे सफलतापूर्वक अपनी स्कूली शिक्षा की यात्रा पूरी करें, तो राज्य की ओर से समर्थक प्रक्रियाएं ज़रूरी होंगी। ऐसी प्रक्रियाओं के अभाव में ऐसे अनुकरणीय उदाहरण भी विकसित नहीं हो पा रहे हैं जो समुदाय के अंदर प्रेरणा बन सकें।

स्कूल जारी रखने के अनुभव

उपरोक्त परिस्थितियों के बावजूद स्कूल में टिके रहने वाले बच्चे/युवा स्कूलों में पारधी बच्चों द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं को रेखांकित करते हैं। जैसा कि ऊपर देखा गया था, परिवार की आर्थिक ज़रूरतें बच्चों की पढ़ाई के क्रम पर असर डालती हैं। किंतु जब इस पहलू को सारी परेशानियों के बावजूद संभाल लिया जाता है और पालक यह सुनिश्चित करते हैं कि उनके बच्चे स्कूल में बने रहें, तब भी हालात में बहुत बदलाव नहीं आता। कुल 221परिवारों में से जिन 70 परिवारों के बच्चे स्कूल जा रहे थे, उन्होंने बच्चों के साथ स्कूलों में भेदभाव और 'छीत' (छुआछूत) की बात बताई। 15 परिवारों ने शिक्षक की ओर से समस्या की बात कही किंतु विस्तार में नहीं गए।

सरकारी में मास्साब छीत करते थे, कहीं और डाल नहीं पाए।

फीस भरने के पैसे नहीं थे; बच्चे हमसे दोस्ती नहीं करते थे; टीचर मारती थी, और सभी बच्चों से अलग बैठाती थीं; भेदभाव था, कहते थे कि तुम बस्ती से आए हो; फीस के पैसे भी नहीं पूरे होते थे।

स्कूल में पन्नी बीनने के कारण बच्चे चिढ़ाते थे; हम स्कूल में जाते तो मारते थे।

मम्मी बीमार थी, घर में पैसे भी नहीं थे, तो स्कूल में फीस भरने में दिक्कत हुई।

जाति प्रमाण पत्र

पारधी एक विमुक्त जनजाति है। देश के अलग-अलग हिस्सों में उनका अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग में वर्गीकरण अलग-अलग है। मध्य प्रदेश के अंदर भी अलग-अलग ज़िलों और ब्लॉक्स में उनको अलग-अलग ढंग से वर्गीकृत किया गया है। भोपाल में 1950 के संवैधानिक आदेश के अनुसार उन्हें अनुसूचित जनजातियों में शामिल किया गया था किंतु 2002 के संवैधानिक संशोधन आदेश में यह प्रविष्टि हटा दी गई।

अनुसूचित जनजाति की मान्यता देने वाला प्रमाण पत्र ही वास्तव में वह प्रमाण पत्र है जो पारधी समुदाय के लोगों के जीवन में कुछ परिवर्तन ला सकता है। जाति प्रमाण पत्र न होने के कारण होने वाली दिक्कतों के बारे में लोगों ने जो बताया वह अगली तालिका में दर्ज है।

समस्या की किस्म	प्रतिशत
स्कूल में दाखिला	57
रोज़गार	30
सरकारी रियायतें	40
स्कूल में रियायतें	23
स्कूल के अन्य मामले	25
अन्य मामले	7

पढाई भी करो तो क्या फ़ायदा नौकरी करने के लिए जाति प्रमाण पत्र मांगते हैं।

बच्चो को नौकरी नहीं मिली और न ही हमें सरपंच और जनपद की सीट मिली। चपरासी तक की नौकरी नहीं मिलती है।

प्रिंसिपल कहते थे इनके पास जाति प्रमाण पत्र नहीं है, इनको स्कूल से निकाल दो।

हमें तो यह भी पता नही है कि कहां-कहां काम में आते हैं जाति प्रमाण पत्र।

किसी भी सरकारी काम में जाति प्रमाण पत्र मांगते हैं। जैसे, सरकारी लोन, ज़मीन हासिल करना।

बच्चो को पढ़ने में बहुत मुश्किल हुई; छात्रवृत्ति भी नहीं मिल पाती है।

कांच के काम करने जाते थे तो जाति प्रमाण पत्र मांगते हैं।

जाति प्रमाण एक बार मुझसे सरकारी स्कूल में माँगा था जब में अपने बच्चे का दाखिला करने गया था। जाति प्रमाण पत्र नहीं होने के कारण स्कूल वाले सर ने मुझे भगा दिया|

बच्चों को कहते हैं कि जाति प्रमाण पत्र लाओ।

मास्टर बच्चों को बोलते हैं कि जाति प्रमाण पत्र बनाके लाओ नहीं तो स्कूल से निकल देंगे।

समुदाय से शिक्षा सम्बंधी बातचीत में तो यही समझ में आता है कि समुदाय तो बच्चों को पढ़ाना चाहता है पर स्कूल में बच्चों के साथ जिस तरह का व्यवहार किया जाता है उससे तो बच्चे वहां रुक ही नहीं पाएंगे। सीखने-सिखाने की ऐसी जगह, जहां उम्मीद की जाती है कि सब एक साथ सीखेंगे, यदि उस जगह पर उनके साथ छुआछूत हो; उनकी भाषा का मजाक उड़ाया जाए; जातिसूचक बातें बोली जाएं; यह कहा जाए कि ये तो सीख ही नहीं सकते, पारधी जो हैं; ये तो बीनने वाले हैं ये तो पढ़ ही नहीं सकते। जब सिखाने वाले ही ऐसे बोलेंगे तो बच्चा कैसे सीखेगा?

यदि एक सहज माहौल ही बच्चो को नहीं मिलेगा तो सरकार की सारी योजनाएं व्यर्थ हैं इन बच्चो के लिए।

स्कूल का इस तरह का माहौल शिक्षा से जोड़ने की बजाय उन्हें बालश्रम की और धकेलता है और यह सबसे आसान लगता है। इन बच्चों पर वैसे भी परिवार में योगदान की ज़िम्मेदारियां हैं। तो उनका इस काम में शामिल हो जाना स्वाभाविक लगता है। एक मायने में वे अपने आपको व्यस्त कर लेते हैं।

पहले की पीढ़ीयों में शिक्षा

जिन 221 परिवारों से मुलाकात की गई, उनमें 21 से 50 वर्ष आयु के 71 पुरुष और 6 महिलाएं स्कूल गए थे। ये 47 परिवारों से थे, जिससे लगता है कि लगभग 20 प्रतिशत परिवार काफी समय से औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने की कोशिश करते रहे हैं, खास तौर से अपने पुत्रों के लिए। पचास से ऊपर के समूह में मात्र एक पुरुष मिला जो कक्षा 2 तक स्कूल गया था।

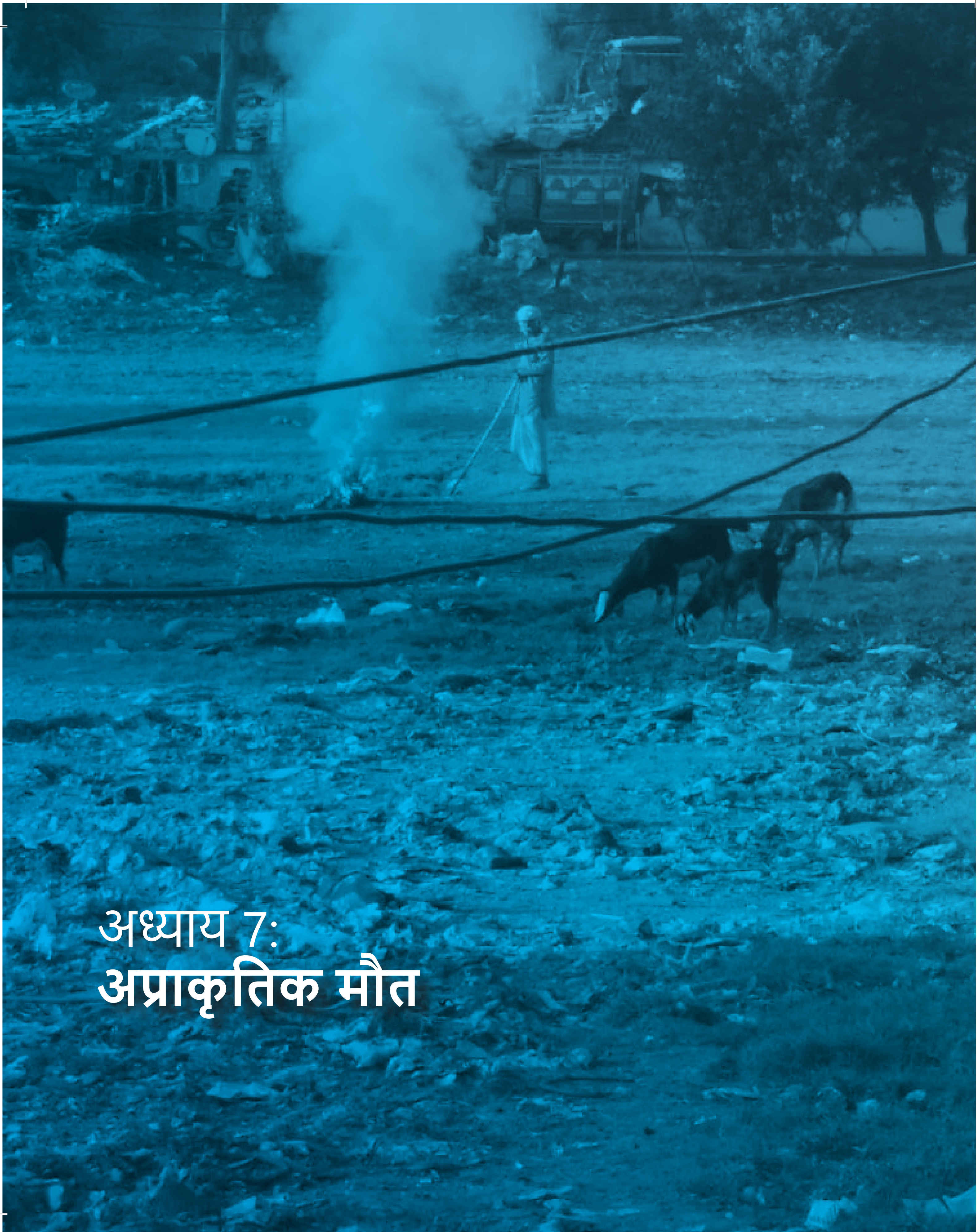
21-50 वर्ष आयु समूह के पुरुष जो स्कूल गए थे	71
21-50 वर्ष आयु समूह की महिलाएं जो स्कूल गई थीं	6
50 वर्ष से ऊपर के आयु समूह के पुरुष जो स्कूल गए थे	1
50 वर्ष से ऊपर के आयु समूह की महिलाएं जो स्कूल गई थीं	0

एक बात ध्यान योग्य है कि हालांकि सारे परिवारों में मिलाकर कभी स्कूल न गए बच्चों की संख्या काफी अधिक है किंतु ऐसे परिवार मात्र 7 हैं जिन्होंने अपने किसी भी बच्चे को स्कूल भेजने की कोशिश नहीं की है। दूसरे शब्दों में, वर्तमान में स्कूली उम्र के बच्चों वाले 98 प्रतिशत परिवारों ने अपने एक या एक से अधिक बच्चों के जीवन में औपचारिक शिक्षा को फिट करने के प्रयास किए हैं।

पुरानी पीढ़ी में भी इसी तरह का रुझान दिखता है कि बड़ी संख्या में बच्चे पांच साल की स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाए थे, किंतु फिर भी 10 पुरुष माध्यमिक स्कूल (कक्षा 8 से 10) तक पहुंच पाए थे और अन्य 10 थे जिन्होंने कक्षा 5 पार की थी (कक्षा 6 व 7)। पिछली पीढ़ी की कमतर शैक्षणिक उपलब्धियों के मद्देनज़र लगभग सारे परिवारों में वर्तमान पीढ़ी शिक्षा के लिए जूझने वाली प्रथम पीढ़ी है। इस बात को समझे बगैर कि ये परिवार शायद अपने बच्चों की शिक्षा के लिए समर्थन नहीं दे सकते, सरकार के स्तर पर समुचित समर्थक तंत्र के अभाव का परिणाम असफलता के गहरे एहसास और शिक्षा व्यवस्था से मोहभंग के रूप में सामने आ रहा है।

ऐसा भी अनुभव बताया जाता है कि गाँव में पहले कुछ साल पढ़े हुए जो बच्चे हैं, उनका अनुभव है कि 2 -3 साल में वे कुछ पढ़ नहीं पाते. क्योंकि उनसे सिर्फ काम कराया जाता है - स्कूल की सफाई, शिक्षक के कुछ निजी काम जैसे बाजार से कुछ खरीद के लाना, उनके खेत में खेती करना वगैरह। गाँव में चौथी किए हुए बच्चों का भी यह अनुभव है।

शिक्षा के माध्यम से ही बदलाव की एक प्रक्रिया शुरू होती है लेकिन शिक्षा का रास्ता इस समुदाय से कोसों दूर है| जब तक शिक्षा के ठोस प्रावधान नहीं किए जाते और उसके पश्चात् आरक्षण के माध्यम से ऐतिहासिक भेद-भाव को पार करने के मौके नहीं बनाए जाते, तब तक पारधी युवाओं के लिए नए मौके खुलने की संभावनाएं शून्य के बराबर हैं| जाति प्रमाण पत्र की अनुपलब्धता के चलते, योजनाएं व्यर्थ हैं क्योँकि कोई लाभ के हकदार ही नही होंगे। आंबेडकर ने कहा भी था, "शिक्षा शेरनी का वह दूध है कि जो पिएगा वही दहाड़ेगा।" मतलब जिसे शिक्षा नहीं मिली, वह अपने लिए लड़ भी नही पाएगा।



अध्याय 7:
अप्राकृतिक मौत

अध्ययन के एक हिस्से में अप्राकृतिक मौत को ख़ास खोलने की कोशिश करी| यह ज़रूरी था क्योंकि बुढ़ापे के पहले ही बहुत मौतें पारधी बसाहटों से सामने आ रही थी| हमने अप्राकृतिक मौत को समझने के लिए – (अ) 60 वर्ष की उम्र के पहले किसी भी तरह की मौत और (ब) 60 वर्ष के ऊपर बीमारी से हटकर किसी भी मौत को, इस श्रेणी में गिना है| एक परिभाषा से इस श्रेणी में आत्महत्याएं, हत्याएं, एक्सीडेंट से जुड़ी मौत आनी चाहिए लेकिन हमने ऐसी मृत्युओं को भी शामिल किया है जो वैसे टल सकती थी| हम को लगता है कि इस मौत की स्थिति कहीं न कहीं लोगों के सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से जुड़ी है इसलिए इनको भी यहाँ शामिल करना चाहिए|

अध्ययन में 221 परिवारों में से, 159 परिवारों ने उनके परिवार में अप्राकृतिक मौत का ज़िक्र किया| अतैव, 4 में से 3 (71.9%) परिवारों ने अपने प्रियजन को सीधे सीधे खोया है| एकत्रित डाटा को देखते समय समझ आया कि बहुत परिवार आपस में रिश्तेदारी में हैं इसलिए कभी किसी ने अपनी बहन का ज़िक्र किया है, तो वो ही नाम किसी और परिवार में बहु के रूप में ज़िक्र हुआ है, इसलिए इस इंसान की मृत्यू दोनों जगह दर्ज़ हुई| अतैव प्रत्येक फॉर्म की जानकारी को जांचा गया और सुनिश्चित किया गया कि प्रत्येक मौत को एक बार ही दर्ज करें| इस पुन:विश्लेषण के बाद भी 101 मौत गए दस साल के दौरान की चिन्हित हुई हैं| निम्नलिखित जानकारी इनका विश्लेषण है|

निम्नलिखित सारणी इन अध्ययन में पहचानी गई विभिन्न उम्र-श्रेणियों में और लिंगवार मौत की जानकारी देता है –

उम्रवार अप्राकृतिक मौत	महिला	पुरुष	कुल
0 से 18 साल	16	12	28
19 साल से 25 साल	12	17	29
26 साल से 40 साल	8	21	29
40 साल से ऊपर	3	12	15
	39	**62**	**101**

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि इस तरह की मौतें सभी उम्र के बीच हो रही हैं| एक छोटी आबादी के बीच के ये आंकड़े दिखाते हैं कि इस समाज की महिला-पुरुष दोनों ही काफी बड़ी तादात में, अपने जीवन के पूरे मौके न जीकर उम्र से पहले मर रहे हैं|

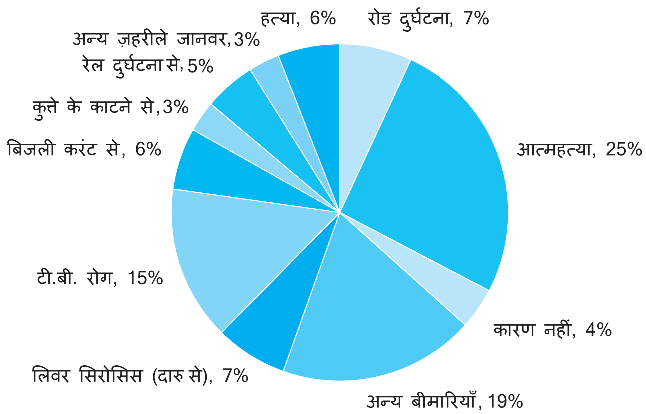
नाबालिग उम्र में लड़कों के मुकाबले लड़कियों ने ज़्यादा जान खोई हैं| बाकी सब उम्र में यह अप्राकृतिक मौत पुरुषों में ज़्यादा दिख रही हैं| स्पष्ट है कि लड़कियों के ऊपर काम कर रही परिस्थितियां सबसे ज़्यादा उनके वयस्क होने तक हैं| 25 वर्ष की उम्र के बाद यह परिस्थितयां विपरीत होती दिखती हैं जब महिलाओं के मुकाबले, बहुत ज़्यादा पुरुषों की जान गयी हैं| लेकिन दोनों को मिलाकर देखें तो यह भी समझ आता है कि किसी भी उम्र में जीवन आसान नहीं होता पुरुष या महिला के लिए| 25 साल की उम्र के पहले ही, जब जीवन के बहुत मौके खुलने चाहिए, तब तक ही 4 में से 1 परिवार के बच्चे/युवा इंसान की जान गयी है| इसका व्यापक असर पूरे समुदाय पर कैसा होता होगा, यह सोचने की ही बात है|

ये आंकड़े गए 10 साल (120 महीने) के हैं, अतैव यह भी भयानक है सोचना कि औसतन हर महीने एक व्यक्ति (कुल 101) की जान जाती है| असुरक्षा और जीवन के लघुपन एवं अपने जीवन में नियंत्रण के अभाव से समुदाय के सदस्य जीते हैं और अवश्य ही उनके व्यक्तित्व और जीवन के विभिन्न आयामों को असर करता है|

इन 101 मौतों के पीछे के कारण निम्नलिखित प्रकार के हैं -

मौत का कारण	महिलाऐं	पुरुष	कुल
आत्महत्या	12	14	26
कुत्ते के काटने से	1	2	3
साप और अन्य ज़हरीले जानवर के काटने से	1	4	5
करंटलगनेसे	1	5	6
आपसी विवाद में हत्या	4	2	6
रोड एक्सिडेंट	1	6	7
रेल एक्सीडेंट	0	3	3
शराब के कारण	0	7	7
टी.बी. की बीमारी से	5	10	15
ख़राब स्वास्थ्य की परिस्थितियां	12	7	19
अनकहे कारण	2	2	4
	39	**62**	**101**

गए 10 सालों में अप्राकृतिक मौत के कारण



आत्महत्याएं

परिवारों में हुए अध्ययन में 26 आत्महत्याओं की जानकारी निकल कर आई हैं| महिलाओं में आत्महत्या करने वाले सभी12 औरतें 10 से 25 वर्ष की उम्र के बीच में थीं| 14 पुरुषों में से एक लड़का 12 वर्ष का था, पांच लोग 18 से 25 वर्ष के बीच के थे और बाकि सब 35 वर्ष से बड़े थे| इनमें से एक व्यक्ति 60 वर्ष के थे|

अलग अलग कारणों से प्रताड़ित होते हुए, पारधी समाज इतनी मायूस स्थिति में आ गया है कि लड़कियां-लड़के, छोटे – बड़े, सभी लोग मजबूर होकर मौत का रास्ता अपनाएं हैं| इस जीवन में इतनी चुनौतियाँ है और लोग बहुत हिम्मत और स्व-सम्मान बनाये रखते हुए जीते ही चलते| लेकिन कभी शरीर और मन थक जाता है|

हरेक इन्सान जिसने मौत का रास्ता लिया, उसको याद करनेवाले बताते हैं कि वो कितना/कितनी हिम्मतवाले और मेहनती इंसान थे लेकिन उस दिन, उस पल हार गये| कभी भूख के कारण परेशान होना, बीमारी का इलाज नहीं होना, घर में बार-बार पुलिस का आना-जाना, माँ का बार-बार अदालत जाना, ज़बरदस्ती शादी में फसे होना – ऐसे कारण तमाम हैं|

लोग गुस्सा और थकान की परिस्थितियों में यह कदम उठाये हैं| न समाज के अन्दर बहुत विकल्प हैं, न बहार की दुनिया ने रास्ते दिये हैं| इसी अध्ययन के अलग अलग हिस्सों में शिक्षा और पुलिस व्यवस्था द्वारा बन रही चुनौतीपूर्ण स्थितियों सामने आये हैं| इन स्थितियों में माँ हो या पिता, बच्चा हो या वयस्क, सभी तनावपूर्ण जीवन में अपनेआप को फंसे हुए महसूस कर रहे हैं| यह परिस्थिति सभी के लिए बहुत ही खतरनाक है| इसलिए किसी को दोषी ठहराना गलत है| शिक्षा या नौकरी का कोई ठोस रास्ता नहीं दिखता न ही चल रहे जीवन में बहुत विकल्प हैं| पुश्तैनी रहन-सहन के तरीके छिन गए हैं और हर उम्र की पीढ़ी अपना एक स्थिरता और अस्तित्व ढूँढने की कोशिश में है लेकिन मुश्किल दिख रहा है|

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए शोध बताते हैं कि पुलिस हिंसा से पीड़ित लोग अपने ज़िन्दगी को अपने बस में नहीं देख पाते और हमेशा एक छोटे समय-काल में अपने आप को देख पाते हैं| लम्बे समय के लिए योजना बनाना, सपने देखना, मुश्किल हो जाता हैं जब इतनी असुरक्षा में जीवन चलता है|

केस-स्टडी 1 – *र, 12 साल का लड़का अपने दो बड़े भाई, भाभी, माँ और पिता के साथ रहता था|पिता एक ज़माने में तीतर पकड़कर घर में कमाकर लाते थे लेकिन अब यह काम-धंधा बांध के बराबर है| र से बड़े भाईयों का भी कोई नियमित काम धंधा नहीं है और घर का खर्चा चलाने की जिम्मेदारी प्रमुखतः माँ और बड़े भाई की पत्नी की है| कभी कभी भाई-भाभी शहर के बाहर जाकर माला बेचने की दुकान लगाते हैं या कबाड़ चुनने निकल जाते हैं| भोपाल की पुलिस उनको हमेशा शक से देखती हैं|*

बस्ती में पर्याप्त पानी नहीं होने के कारण सुबह-शाम 16 कुप्पे पानी भरना और साथ-साथ घर आँगन की सफाई, खाना रोटी बनाना, कपड़े धोना जैसी ज़िम्मेदारियां र के ऊपर आती थी, जो वो अपने भाई के साथ पूरा कर लेता था, लेकिन सबसे छोटा होते हुए, उसी को ज़्यादा काम करना होता था|

आत्महत्या के चार दिन पहले र के के बड़े भाई को पुलिस ने जेब काटने के आरोप में पकड़ रखा था| रोज़ माँ थाने जाकर छुड़वाने की कोशिश कर रही थी लेकिन चार दिन थाने में रहा लेकिन पेश नहीं किया| उस दिन, उसे पेश करने की बात हो रही थी और र की माँ ज़मानत के लिए निकली ही थी| र साथचलने के लिए ज़िद कर रहा था| लेकिन उसकी माँ उसे साथ नहीं ले गई और खर्चे के लिए 10 रुपए का नोट दिया| करीब 2 घंटे बाद वो अपने घर में मृत पाया गया| उसने फांसी लगा कर ख़ुदकुशी की थी|

केस-स्टडी 2 – *म, 21 वर्षीय की शादी एक साल पहले अपनी भांजी से हुई थी| दोनों ही शादी में कभी भी खुश नहीं थे क्योंकि बचपन में तय की गयी शादी का दोनों के लिए कोई मायने नहीं था| ज़्यादातर पारधी दम्पत्तियों नुमा, म की पत्नी बीनकर कमाती थी और पति को जब कभी कहीं शादी या मेले में काम मिल जाये, तो वो करता था नहीं तो घर पर दोस्तों के बीच रहता था| म किसी और को पसंद भी करता था और यह अपनी पत्नी को खुलकर बोलता था| एक बार जब उसकी पत्नी अपनी माँ के गयी हुई थी, तो म ने फांसी लगा कर अपनी जान ले ली| बहुत समय तक म की पत्नी इस ग्लानि में थी कि उसके कारण म मर गया लेकिन वो खुद भी 16 साल की हो रही थी|*

केस-स्टडी 3 - *ज , उम्र 70 साल ने फांसी लगा कर आत्महत्या कर ली| उनके पूरे शरीर में दाद की बीमारी फैल गई थी| परिवार वालों ने अपने सामर्थ्य के हिसाब से इलाज भी करवाने की कोशिश की पर दाद ठीक नहीं हुई| दादा के घर ऐसा भी नहीं था कि जहाँ रोज की लड़ाइयाँ होती हो या पुलिस परेशान करने आती हो|| घर की आर्थिक परेशानियों से बचने के लिए शायद उन्होंने यह कदम उठाया|*

केस स्टडी 4 – *ट, 11 वर्ष की होगी जब उसको पुलिस ने पहली बार उठाया| मार-पिटाई और पैसे की मांग उसके साथ बार-बार होती रही और उस साल उसको तीन बार थाने तक लिजाया गया| अदालत में भी जब उसको एक इन्सान के घर के आँगन से उठाकर चोरी का मुकदमा बनाया गया तो वो बोलती रही कि मैं पापी लोगों से बचने के लिए कूलर के पीछे छुपी थी| लेकिन जज ने न मानकर उसको सज़ा सुनाई| कुछ महीनों के बाद उसको फिर पुलिस ने पेट्रोल की चोरी के इलज़ाम में उठाया| थाने में शारीरिक और यौनिक हिंसा के बाद छोड़ा गया, और घर आते ही उसने अपने आप को फांसी लगा ली|*

ऐसी अलग-अलग परिस्थितियों में खुदकुशी का निर्णय यही दिखाता है कि पारधी समाज में चुनौतियों से बाहर आ पाने का विश्वास कम होते हुए, लोग इस रास्ते को अपना रहे हैं| खुदकुशी नहीं करने का कोई बहुत ठोस और बड़ा आकर्षण नहीं है क्योँकि अलग अलग तरह से लोग अपने आसपास और खुद को फंसा हुआ ही देख रहे हैं| रिश्तों के तनाव, जीवन में काम, शादी, पहचान, पुलिस, सभीजगह कुछ नकारात्मकता ही भर जाता है और एक 'आज़ादी' की कमी का एहसास लोगों को संकोचता है| कब यह 'घबराहट' एक ऐसे कदम में बदल जाये, मुश्किल है पहचानना|

परिवारजनों की बातों से प्रतीत होता है कि यह कदम कुछ ही पलों में लिया गया कदम रहा होगा| इसका यह मतलब नहीं कि यह विचार पहले नहीं आया; समूह चर्चा में बहुत लोगों ने कहा कि उनमें से कई लोग ने मरने का सोचा है और कोशिश भी की है| लेकिन यह भी सच है कि कई बार इस समाज में अलग अलग प्रकार की तात्कालीन परिस्थिति के चलते इस कदम को उठाने को सोचता है, और यह नहीं है कि एक ही परिस्थिति साल दर साल परेशान कर रही होती है| सच यह है कि बहुत सारी ऐसी परिस्थितयां व्यक्ति को तोड़ने का काम कर देती हैं|

इन समूहों के बीच चर्चाओं और अनुभव के आधार पर यह भी उभरता है कि खुदकुशी का पल गुस्से से जुड़ा है और साथ साथ थकान और कुंठा से भरा है| कई लोग इतने नाराज़ होते हैं, पुलिस से, दोस्त से, परिवारजन से कि हिंसक झटके में अपने आप को चोट पहुंचा देते हैं और दूसरी तरफ, लगातार प्रताड़ना या परेशानी एक 'हार' का अहसास पैदा करते हुए अपने आप की जीवन की कीमत को बेमतलब का लगने लगता है|

व्यवस्थाओं की कमी और काम के अंदरूनी खतरों के चलते

जानवरों के काटने से – सांप और अन्य ज़हरीले जानवर के काटने से 5 मौतें बताई गयीं| इसमें ज़्यादा अपने काम धंधे में निकले सड़क के, नालियों में कचरा बीनते हुए लोग रहे थे| शहर के ऐसे कोनों में रहना जहाँ सांप-बिच्छू निकलते हैं इस तरह के खतरों का कारण बन जाता है| कुत्ते के काटने पर रेबीज़ के टीके तुरंत नहीं लगवाना और देर हो जाना भी एक समस्या रही और इसके चलते 3 लोगों की मौत दर्ज हुई|

स, 18 साल की लड़की थी, जिनकी जीविका का मुख्य स्रोत कचरा बीनना था, हर बार की तरह जब वो कचरा बीनने गई तो उन्हें सांप ने काट लिया और उनकी मौत हो गई.

करंट लगने से – बिजली के चपेट में आने से कई लोगों की जान गयी हैं| कभी बारिश में शौच में जाते वक्त खुल्ली तार पर पांव रखा गया है या खम्बे के पास खड़े हुए और वहां गीले में पैर रखा गया और करंट लगा है| ये वाले हादसों की रिपोर्ट अलग अलग बसाहटों से आई है| शहर में इस तरह की बस्तियों के लोगों के लिए बिजली व्यवस्था बहुत खतरनाक है|

ख़राब स्वस्थ्य के चलते हुई मौतें

'बिना उम्र की मौत' की शब्दावली में हमने ऐसी मौत को जोड़कर रखा है जो कि उन बीमारियों के चलते हुई हैं, जिनका इलाज कराना आज के चिकित्सा की सुविधाओं में मुश्किल नहीं होना चाहिए था| हमने पाया कि 60वर्ष से कम उम्र में कई ऐसी बीमारियों के चलते लोगों की जान गयी हैं, जिनका शहर में रहते हुए सफल इलाज हो सकता था| इसलिए इन मौत के प्राकृतिक कारण पहचानते हुए, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों पर भी गौर किया जाना चाहिए| यही बीमारियों किसी और समुदाय में या तो इतनी पनपती नहीं है या किसी और पृष्ठभूमि के इंसान को इलाज सुनिश्चित करना इतना मुश्किल नहीं होता है|

टी.बी. की बीमारी से हुई मौतें – टी.बी भी ऐसी बीमारी जो लोगों के रहने की शैली से फैल रही है| इसको अगले हिस्से में देखा जा रहा है| 18लोगों की सूक्ष्मब्रण रोग (ट्युबरक्यूलोसिस) के चलते मौत हुई है| इसमें 7 औरतें और 11 आदमी थे| इसमें ज़्यादातर लोग 35 से 45 वर्ष के बीच के थे और कुछ इनसे छोटे और बड़े भी| एक15वर्ष कीलड़की भी इसका शिकार हुई है, और वैसे ही 50-55 साल के आदमी भी|

न, आज 18 साल की है| उसके पिता और माँ दोनों टी.बी. के चलते मर गए| इलाज शुरू होते हुए मुश्किलें और प्रकार की भी आती गयीं| पिता दारु भी पीते थे और दो बार नशा मुक्ति केंद्र से दारु छोड़ने की आदत में भी आये लेकिन फिर वापस शुरू हो गयी| इसके चलते दवाई का इलाज भी ठीक से नहीं कर पाए| पिता के मौत के बाद, न की माँ भी इसी बीमारी से ग्रसित मालूम हुई और उनका इलाज शुरू हुआ| उसी दौरान समाज की रीति अनुसार उन्हें छोटे देवर के साथ रहना मजबूर किया गया और इस रिश्ते की अस्पष्टमुश्किलों में उनकी मौत हुई (हत्या/ खुदकुशी या बीमारी के चलते जान जाना)| एक साल बाद न का भी टी.बी. पहचाना गया| थोड़ी पढ़ी-लिखी, थोड़ी ज़िद्दी और थोड़ी कम उम्र, शायद ये सब को मिलाकर वह अपना इलाज अकेले करती गयी| रोज़ बीनने जाते वक्त वो अस्पताल से अपनी दवाई की खुराक लेती रही और आज टी.बी. मुक्त है|

लीवर सिरोसिस – दारु के गलत उपयोग से भी जवान लोगोंकी जान गयी हैं|शराब से मरनेवाले लोगों की संख्या 7 है और इनमें औसतन उम्र 28 वर्ष की है|

जवान और छोटे उम्र के लोगों में दारु के गलत सेवन करना बड़ों के मुकाबले छोटों में स्पष्टतः ज़्यादा है| यह एक खतरनाक तथ्य को दर्शाता है, यह कि पारधी समुदाय की पीढ़ियों के लिए परिस्थितियां और ख़राब ही हो रही हैं, या ऐसा कुछ भी ठोस विश्वसनीय और सपनीला सबके हाथ में नहीं आ रहा है| आत्महत्या जैसे, यह भी जीवन की निराशा से कहीं जुड़ा है और एक सामाजिक परिस्थिति जहाँ दारु के अन्धाधुन्ध सेवन की स्वीकार्यता से भी|

अन्य बीमारियों के चलते – पारधी समाज के लोग बहुत सीमित ही एक शासकीय अस्पताल में इलाज के लिए जाने के लिए तत्पर होते हैं और प्राइवेट में इलाज कराने के आर्थिक क्षमता भी नहीं रहती है| पूर्व में जड़ी-बूटियों और जानवर के शरीर के हिस्सों से बनाई जा रही दवाइयां पर निर्भरता थी लेकिन अब इस देसी इलाज से जुड़ी सामग्री की नियमित उपलब्धता नहीं होते हुए, समय पर उपयुक्त उपचार नहीं होता है|

इसके चलते बीमारियों में ग्रसित होना और एक लम्वे समय तक 'अस्वस्थ' की स्थिति में जीने की बात सामने आई हैं| लकवे, निमोनिया, मलेरिया, पीलिया, माता, मोतीजीरा, फिट आने, पथरी और 'सर से जुड़ी बीमारी' बताते हुए सर्वे में लोगों ने 5 साल से 55 साल के बीच के लोगों के मौत का कारण बताया| गौरतबल है कि लकवे से मरनेवाले पांच लोग सभी महिलाऐं हैं|

एक्सीडेंट के चलते मौत

कई लोगों की मौत एक्सीडेंट के कारण हुई हैं| आठ आदमी और दो बच्चों (एक 6 वर्षीय लड़की हैं और एक 7 वर्षीय लड़का है) की मौत ऐसे हादसों के कारण सामने आई| सात लोगों की मौत बाइक चलते या बाइक पर पीछे बैठे रोड-एक्सीडेंट में हुई या रेल पटरी पर गिरके हुई|

बाइक तेज़ चलाना, दारु पीकर चलाना – ये परिस्थितियाँ बस्ती में आम हैं और इन एक्सीडेंट के पीछे हैं| लड़कों का इस तरह की चुनौतियों और खतरे ज़िंदगी में अपनाना कहीं उम्र से जुड़ा है और कहीं अपने जीवन के प्रति बहुत लापरवाह होना भी जुड़ा है| कई बार लड़के गुस्से में, या देर रात अपने घरवालों को छोड़कर गाँव तरफ निकल जाते हैं| कभी भी मौत घर के आसपास नहीं हुई होती, वरन हाईवे पर ही हुई होती है| घर के बुज़ुर्ग कई बार छोटों को रात को चलाना, दारु पीकर चलाने से रोकते हैं क्यूंकि यह खतरा उनके लिए बहुत वास्तविक है|

हत्या

पारिवारिक विवाद और आपसी झगड़ों में 2 पुरुष और 4 महिलाओं की मौतें हुई हैं| ये सभी 30 साल के कम बहुत जवान लोग थे| मारनेवाले परिवार के लोग या समुदाय के अन्दर के ही लोग थे|

चर्चा से समझ आया कि यह नियोजित हत्याएं नहीं होते हुए एक लगातार हिंसक माहौल में रहते हुए, कब यह हिंसा जान लेने के स्तर तक हो जाए, इसको नहीं पहचानते हुए दारू के सेवन की परिस्थिति में घटित हुई हैं| हत्यारे हमेशा आदमी ही रहा है और उसने हाथ में जो आये, उससे सामने वाले को मारा है जिसके चलते गलत जगह चोट लगकर जान चली गयी|

अनकहे कारण

चार ऐसी मौतों की बात सामने रखी गयीं जिनका कारण अचानक हुई, उतना ही बोला गया| इनमें दो लड़कियां उम्र क्रमशः 8 और 21 साल और दो लड़के उम्र 9 और 12 साल के थे| बार बार बोलने पर भी यही बात हुई कि न बीमार थे और न ही कोई दुर्घटना घटी|

हिंसा और नकारात्मकता का माहौल – पुलिस, अंदरूनी समाज, मुख्यधारा समाज

किसी भी सन्दर्भ में बात की जाए, तो मुश्किल का सबसे बड़ा स्त्रोत पुलिस व्यवस्था पहचानी जाती है| हम इस अध्ययन में इस व्यवस्था को केन्द्रित करके और समझेंगे, लेकिन इस अध्याय में भी पारधियों के जीवन के इस पहलु पर गौर किया जाना आवश्यक है|

कई बार लोगों के स्वास्थ्य पर सीधा असर दिखता हैं, जैसे कभी कभी शारीरिक हिंसा की चोटों के चलते फ्रैक्चर भी हुआ है और लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे सामने आ रहे उदहारण इन्द्रमल बाई, 40 वर्षीय महिला (गाँधी नगर बस्ती), टिंटी बाई, 14 वर्षीय लड़की (राजीव नगर) की पुलिस प्रताड़ना के चलते खुदकुशी हैं|

ऐसे सीधे सीधे उदाहरणों को छोड़कर, जब दोनों पहलुओं (पुलिस और अप्राकृतिक मौत) को जोड़ते हैं तो समझ आता है कि क्योंकि जीवन के हर पल पर पुलिस व्यवस्था असर कर रही है, जीवन की इस असुरक्षा के माहौल में जीवन में अपनेआप को संवारना बहुत असंभव है, और इन सब के बावजूद हम इस समाज के सदस्यों को एक बेहतर जीवन-यापन के प्रयास करने में देख रहे हैं| लेकिन 'मुखबिरी' करवाना, लगातार जेल में बंध होने के डर, किसी भी समय उठाना, मारना, पैसे ऐंठना, यह सब बचपन से यादों में इतना ज़्यादा गुथा हुआ है कि जीवन में 'बदलाव' की उम्मीद होना बहुत मुश्किल हो जाता है|

इस सबसे लड़ने की ताकत समाज में अपनी साझी पहचान में आ सकती है| लेकिन अंदरूनी समाज की पंचायत, समाज के अन्दर के लोगों के लिए पितृसत्तात्मक और लोगों पर नियंत्रण रखने के लिए विचारधारा का रूप ग्रहण करी है| पंचायत के 'नायक' मुख्यधारा राजनीति के चपेट में लाये जाते हैं और केवल उनका 'उपयोग' किया जाता है|

इस सब के बीच मुख्यधारा समाज का पारधी के प्रति नकारात्मकता और शासकीय व्यवस्थाओं का कोई ठोस लेना-देना नहीं है (शिक्षा हो या स्वास्थ्य या कौशल विकास योजनायें इत्यादि)| अतैव पारधी समाज के जीवन को समझौतापूर्ण तरीके से जीना पड़ा है और इन्हीं मजबूरियों के बीच बहुत लोग बे-वक्त मरते गए हैं| यह देश में एक समाज में बेचैनी की एक व्यापक परिस्थिति को दिखा रहा है लेकिन फिर भी इस समाज और ऐसे विमुक्त जातियों के प्रति विशेष नज़र नहीं जा रही|

अध्याय 8:
खान-पान और पोषण



ज़्यादातर पारधी घरों की माली हालत इतनी मुश्किल होती है कि तीन वक्त का खाना पकाना, जो आम घरों में होता है, यहाँ नहीं हो पाता। एक भी घर में तीन वक्त का खाना नहीं पकता है| क्योंकि बहुत सारे घरों में औरतें सुबह जल्दी पन्नी बीनने के लिए निकल पड़ती हैं, सुबह के खाना पकाने को उतनी प्राथमिकता भी नहीं दे पाते। सुबह का नाश्ता खरीदा या माँगा हुआ होता है|

राजीव नगर की सुतराज कहती है: "हम तो सुबह-सुबह 4 बजे घर से निकलते हैं। 10–11 बजे वापिस आते हैं। बाहर ही कुछ मांगकर खाते हैं या समोसा या पोहा या जो कुछ मिलेगा, वही खा लेते हैं। सुबह का नाश्ता बनाने के लिए वक्त कहां होता है?"

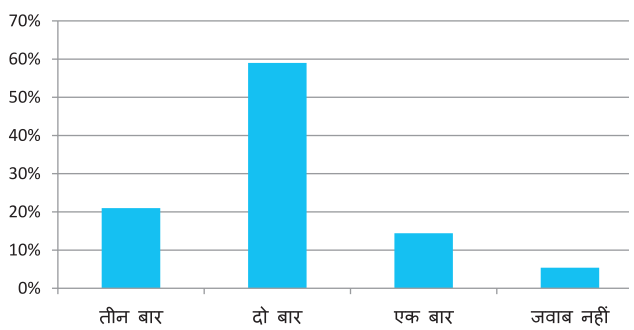
एहसान नगर की भोली ने कहा: "पहले हम सुबह 4–5 बजे पन्नी बीनने जाते थे, आजकल 6 बजे निकलते हैं। फिर भी सुबह नाश्ता नहीं बनाते। कभी-कभी पन्नी बीनने के बाद घर आते हैं तब कुछ रोटी-शोटी बनाते हैं, या सीधे शाम को ही। कभी-कभी थक जाते है तो कुछ भी नहीं बनाते| ऐसा ही कुछ खाते हैं।"

कोशिश रहती है कि दिन में खाना पका पायें| लगभग तीन-चौथाई घरों में 2 बार भी पका लेते हैं। बाकि घरों में एक बार बनता है, और जब संभव हो, तो दो बार बनाते हैं|

दिन में कितनी बार खाना पकता है?	प्रतिशत
1 बार	13.57%
2 बार	73.75%
कभी 1 या कभी 2	9.95%
कभी पकता है कभी नहीं पकता है	1.35%
जवाब नहीं	1.35%
टोटल	**100%**

जब ख़ास बीते हुए कल के दिन की बात करी तो पाया कि केवल 59% बोले कि उन्होंने कल दो बार खाया था –

गए दिन कितने बार खाना खाया



अनाज या पका हुआ भोजन माँगना

80% लोगों ने कहा कि कभी-कभी वो मांगकर खाते हैं| सिर्फ 20% परिवारों को मांगकर नहीं खाना पड़ता। मांगने वाले ज़्यादातर लोग मंदिर या मस्जिद के सामने मांगते हैं। पहले घर-घर जाकर मांगते थे; लेकिन अब वैसा मांगना किन्ही क्षेत्रों में कम हुआ है। और कहीं पर अभी भी काफी कायम है (मध्यमवर्गीय कॉलोनी के रवैये के आधार पर यह तय होता है)|

संक्रांति वगैरह त्यौहारों के वक्त मांगना काफी फायदेमंद रहता है। संक्रांति में गाँव-गाँव मांगने जाते हैं। गाँव में मांगना एक तरह का हक और रिवाज माना जाता है। आज के पारधी परिवारों के पूर्वजों ने गाँव की रक्षा की है| पारधी शिकार करना जानते थे तो यदि सूअर या अन्य जानवर आकर खेत का नुकसान करने लगे, तो उनका शिकार करना, खेत को तबाही से बचाना यह काम पारधियों का होता था। तब गाँववालों ने पारधियों को ज़मीन भी दी थी, उनको ज़मीन पर बसाया भी था। ऐसा माना जाता है कि उस रखवाली के बदले में अब पारधियों को मांगने का हक है। कभी-कभी गाँव से 10–15 क्विंटल तक लेकर आते हैं।

खास मौकों पर दुकानों, पार्टियों, शादियों के बचे हुए खाने पर भी गुजारा होता दिखता है। कई जगह कुछ लोग हफ्ते के विशेष दिन गरीबों को खाना खिलाने आते हैं। वह भी खाना मिलने का एक ज़रिया होता है।

भरपेट भोजन का अभाव

फिर भी 71% से ज़्यादा लोगों ने कहा कि उनके घर में सबको हर रोज़ पेट भर खाना नहीं मिलता। कई लोगों में आँखों में कमज़ोरी होती है| कुपोषण के लक्षण अलग अलग घरों में दिखते हैं, ख़ास तौर छोटे बच्चों और औरतों की शक्ल और शरीर पर|

कई परिवारों में छोटे बच्चे भी 5 बजे उठकर बीनने जाते हैं। जब भूख लगती है तो वे कुछ खरीद कर खा लेते हैं। बहुत बार सुबह का खाना भी मांगकर खाते हैं। बच्चे दिन भर घूमते रहते हैं, तो उनको मालूम होता है कि कहाँ क्या मिलता है। कोटरा सुल्तानाबाद के क्षेत्र में करुणाधाम, मंदिरों के सामने मांगकर खाते हैं। अलबत्ता, बहुत-से बच्चे भूखे भी रहते हैं और उपयुक्त भोजन नहीं भी मिलता है|

समूह चर्चा से उभरा कि बहुत बार भूख के कारण बच्चों को पढ़ना मुश्किल हो जाता है। बस्ती की महिलाएं बताती हैं कि जब वे पेट से रहती हैं, तब भी उनको अच्छी खुराक नहीं मिल पाती।

योगिता जब पेट से थी, तब वह कई बार सूखी रोटी पानी में भिगोकर खाती थी।

पारधी समुदाय की रहन-सहन और कमाई के स्त्रोत को समझकर लगता है कि उनके भोजन और आहार में वो नियमितता नहीं ला पाते|

वो कमाने कब जाते हैं, उन्हें कचरा चुनते समय उस दिन क्या मिलता है और क्या नहीं, इस के ऊपर उनका उस दिन का भोजन तय होता है. यह असंघटित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूर और हाशिये पर स्व-रोजगार में जुड़े हुए लोगों से मिलता-जुलता है|

आज की कमाई.... आज का भोजन

पारधी घरों की माली हालत रोज़ कमाओ, रोज़ खाओ वाली होती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी इतना हाशिये पर रहने के कारण रोज़ के खाने की व्यवस्था रोज़ करना यह एक आदत या उस समुदाय के खाने की संस्कृति का हिस्सा बन गया है। सबसे ज़्यादा परिवार तेल रोज़ खरीदते हैं। काफी परिवार दाल, सब्ज़ी और आटा भी रोज़ खरीदते हैं। इसके बाद नंबर आता है शक्कर और चावल का।

महीने भर का राशन लाना तो शायद ही कभी होता हो। 221 परिवारों में से 68% परिवारों के पास राशन कार्ड है, जिस के कारण वो जब पैसे हो, तब चावल-गेहूँ खरीद सकते हैं| लेकिन 32% परिवारों के पास राशन कार्ड भी नहीं है| इसके कारण उनको पूरा खाने का सामान बाजार से ही महंगे दाम से खरीदना पड़ता है|

किन्हीं ख़ास मौसम में कुछ परिवार के लोग गाँव से दाल ला पाते हैं| लेकिन यह एक महीने भी नहीं चलती क्योँकि बहुत कम मात्र में आती है| खाने के शौक़ीन होते हुए वे लोग मसाले भी खुद पीसते हैं|

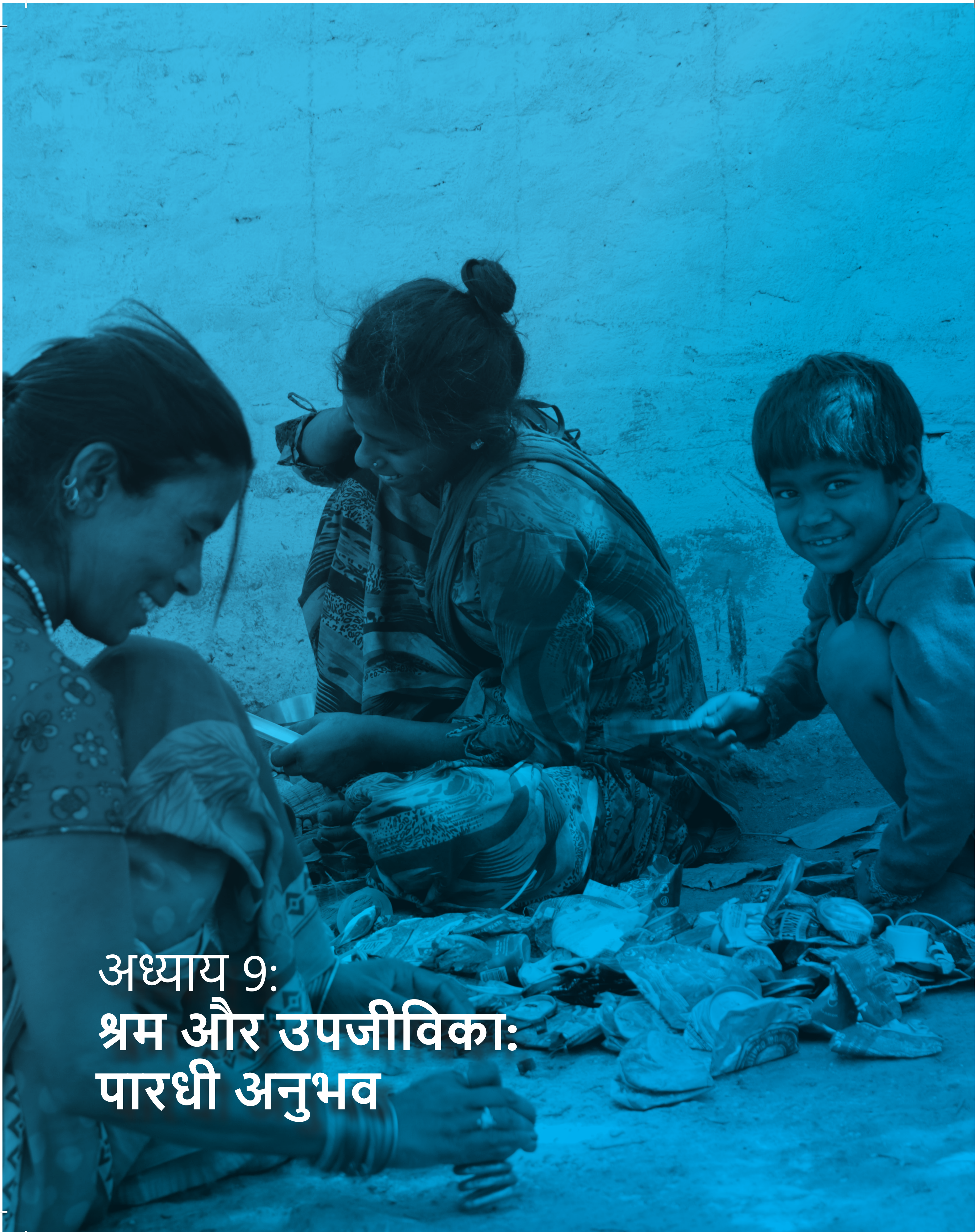
रोज़ के रोज़ खरीदने का मतलब होता है हर चीज़ महंगी खरीदनी पड़ती है। यह देखना दिलचस्प होगा कि थोक और हर रोज़ की खरीदी के मूल्यों में कितना फर्क है और सिर्फ ठीक-ठाक व नियमित आमदनी ना होने के कारण और कितना नुकसान इस समुदाय को झेलना पड़ता है। इस मामले में और बहुत सारे हाशिये के समुदायों की भी यही स्थिति है।

पारधी समुदाय शिकारी समुदाय है और कुछ हद तक उनके रहन-सहन और खानपान की आदतों पर उसका प्रभाव है। सभी घरों में किसी भी तरह का गोश खाने का रिवाज़ है| हफ्ते में 3–4 दिन तो मछली या जानवरों का कोई अंग खाने में आता है। महंगाई के चलते वे ऐसे जानवरों और पक्षियों के शरीर के ऐसे अंग खाते हैं जो बहुत सस्ते में मिल जाते हैं, जैसे पंजे, आंत या मुंडी। कई लोग ऐसे अंगों को खाना कम दर्जे का समझते हैं और इसलिए ये चीज़ें सस्ती होती हैं हालांकि इनमें प्रोटीन अच्छी मात्रा में होता है। शायद एक चीज़ है जिसके कारण पारधियों जैसे समुदाय इतनी सारी मुश्किलों के बावजूद भी गुज़ारा कर पाते हैं| जब कोई मौका होता है और पैसे जोड़े जाते हैं, तो पूरा मुर्गा या बकरा भी लाया जाता है|

मटन-मच्छी के कौन से अंग खाते हैं?	पंजे	मुंडी	आंत	मुर्गा	और कुछ
कितने परिवार	184	182	172	165	15
प्रतिशत	83.3	82.4	77.8	74.7	6.8

कुछ बस्ती के मर्द मछली पकड़ते हैं। इसमें से कुछ मछली घर के लोग खाते हैं, कुछ पड़ोसियों को देते हैं। बहुत ही कम बार पकड़ी हुई मछली बेची जाती है। कभी कबार जंगल से भी खरगोश या तीतर का मटन खाने को मिलता है| लेकिन ज़्यादातर शिकार जब करते हैं तो बेचने के लिए करते हैं|

ईद जैसे त्यौहारों के समय बकरे की आंत मांगकर लाते हैं और उसको सुखाकर रख लेते हैं जिसे काफी समय तक खा सकते हैं। लेकिन यह आहिस्ता-आहिस्ता कम हो गया है क्योंकि कहीं न कहीं साम्प्रदायिकता बढ़ गई है और उसका असर खाने-पीने जैसे मामलों में भी हुआ है।



अध्याय 9:
श्रम और उपजीविका: पारधी अनुभव

पारधी समाज में आर्थिक स्थिति को समझने के लिए लोगों से उनके काम-धंधों, काम धंधों से जुड़ा पलायन और कमाई की ज़िम्मेदारी में परिवारजनों को पहचानने हेतु सवाल पूछे गए|

कबाड़ – मुख्य कमाई का स्त्रोत

भोपाल की बस्तियों में लगभग 90 प्रतिशत परिवारों के लोग कबाड़ चुनने का काम करते हैं और इसी से आमदनी कमाते हैं।

	औरतें (18-50वर्ष)	पुरुष (18-50वर्ष)	लड़कियां (<18 वर्ष)	लड़के (<18 वर्ष)	बुज़ुर्ग महिलाएं (>50 वर्ष)	बुज़ुर्ग पुरुष (>50 वर्ष)
संख्या	188	52	93	56	40	*2*
प्रतिशत	85	23.5	42.1	25.3	18.1	0.9

85 प्रतिशत परिवारों की महिलाएं और 42.1 प्रतिशत परिवारों में 18 से छोटी लड़कियां इसी काम में लगी हैं। पुरुष का भी इस कारोबार में भूमिका होती है, लेकिन महिलाओं के मुकाबले कम काम करते हैं – करीब 23.5 प्रतिशत पुरुष और 25.3 प्रतिशत 18 से छोटे लड़के कबाड़ से जुड़े हुए काम करते हैं।

जब कि लड़के (बच्चे) सड़क पर कचरा बीनने जाते हैं, वयस्क पुरुष और जवान लड़के या तो कबाड़ ठेले पर लेकर आते हैं, या घर में कचरे की छटाई में मदद करते हैं| लोगों से बातचीत में समझ आया कि कुछ साल पहले तक औरतों द्वारा बीनकर लाए हुए कचरे को छांटने के काम में मर्द मदद करते थे। अब देखा गया है कि मर्द इस काम से पीछे हटे हैं। एक कारण यह है कि इतना कम कचरा मिल रहा है कि पहले की तरह कचरा जमा करके, छांटकर पुराने सिटी में बड़े कबाड़ीवाले के पास ले जाना आजकल नहीं हो पाता। हर रोज़ कबाड़ीवाले के पास जाकर कचरा न बेचें तो खाना खरीदना मुश्किल हो जाता है।

अनेक कारणों से कचरा कम हुआ है। एक कारण नगर निगम द्वारा घर-घर से कचरा उठाना है। एक और वजह यह भी है कि दूसरे समुदाय के लोग भी कचरा बीनने के काम में आ गए हैं। गाँवों में खेती की समस्या के कारण गाँवों से लोग शहरों में आ रहे हैं। यहाँ नौकरियां नहीं मिलती और कोई धंधा शुरू करने में पूँजी की ज़रूरत है जो उनके पास नहीं होती। कचरा बीनने में सबसे कम पूँजी लगती है। इसलिए ज़्यादा से ज़्यादा लोग और अलग-अलग समुदाय कचरे के काम में आते हैं। तब हरेक के हिस्से में कम-कम कचरा आता है।

यह भी समझ आया कि पारधी मर्द भोपाल शहर में सड़क पर नहीं बीनते लेकिन जब बाहर गाँव कमाने-खाने के लिए जाते हैं, तो कचरा बीनने का काम भी करते हैं और बाकी काम भी करते हैं।

महिलाओं की ज़िम्मेदारी

इस सर्वेक्षण से एक बात यह उभरी है कि पुरुषों के मुकाबले कहीं ज़्यादा महिलाएं आमदनी कमाने में लगी हैं। यह भी दिखता है कि औरतों की तुलना में कम मर्द काम करते हैं| और मर्द कई तरह के काम करते हैं जबकि महिलाओं के पास ज़्यादा विकल्प नहीं हैं और वे ज़्यादातर कचरा बीनने के काम में सिमटी हुई हैं। और यह स्थिति लड़के-लड़कियों के बीच भी नज़र आती है, हालांकि संख्याएं कम हैं।

इसके अलावा, महिलाएं जलाऊ लकड़ी के रूप में ईंधन बटोरने जंगल भी जाती हैं। शाम का भोजन पूरी तरह से उनकी ज़िम्मेदारी है। सुबह का खाना अक्सर परिवार का सबसे बड़ा बच्चा बनाता है, जो प्राय: लड़की होती है। किंतु जब लड़की कचरा बीनने जाती है या जब घर में कोई लड़की हो ही नहीं, तब सुबह के खाने की ज़िम्मेदारी घर के लड़के की होती है और घर को बुहारने की भी।

पारधियों में 'कमाऊ' कामों की अनिश्चितता

हालांकि कबाड़ से जुड़ा काम पारधी परिवारों के मुख्य काम है, उनकी ज़िन्दगी और माली हालत इतनी अनिश्चित है कि इसके साथ कोई न कोई और काम की कोशिश होती है| दूसरे कमाई के स्त्रोत सालभर तो दूर, थोड़े समय के लिए ही शुरू और बंध होते रहते हैं। जब पूछा गया कि परिवार की मुख्य आर्थिक गतिविधि क्या है, तो नाना किस्म के काम बताए गए। कचरा बीनने के अलावा परिवार जो अन्य काम करते हैं, वे हैं खेती करना, दूसरों के खेत में मज़दूरी करना, तीतर-खरगोश पकड़कर बेचना, मछली पकड़ना, जंगल से लकड़ी इत्यादि ले आना, अंगूठी-तावीज-माला बेचना, फेरी लगाकर रुमाल, सिन्दर बेचना, पार्टीयों में वेटर का काम करना, ऑटो चलाना, भीख मांगना इत्यादि|

काम के प्रकार	संख्या	प्रतिशत
खेती करना	56	25.3
मजदूरी करना (दूसरों की खेत में, इत्यादि)	122	55.2
पारम्परिक काम		
तीतर खरगोश पकड़ना	74	33.5
जंगले से कुछ और लाना	28	12.7
अंगूठी ताबीज़ की दूकान	63	28.5
माल बेचना		
फेरी लगाकर बेचना (जैसे रूमाल, सिंदूर)	13	5.9
धागे बेचना	27	12.2
अन्य काम		
पार्टी में काम	44	19.9
ऑटो चलाना	4	1.8

काम के प्रकार	संख्या	प्रतिशत
मच्छी पकड़ना	26	11.8
भीख मांगना	63	28.5
कुछ और	8	3.6

पारम्परिक तौर से पारधी लोग गाँव के बाहर आकर कुछ दिन के लिए बसते थे और वहीं के आसपास के जंगल में थोड़ा शिकार करते थे| औरतें गाँव में जाकर माला अंगूठी बेचतीं और आटा अनाज मांगती थी| ये वाला काम अभी भी कुछ हद तक चलता है| तीतर खरगोश पकड़ना गैर-कानूनी है लेकिन आज की पीढ़ी के लोग इस काम को करते हुए बड़े हुए हैं और उनके लिए कुछ ठोस विकल्प नहीं शुरू हुए इसलिए यह पीढ़ी पैसे की कमी में इस काम पर निर्भर हो जाते हैं| घूम घूम कर बेचने के कामों में नयी सामग्री भी जुड़ गयी है; जो भी मौसम में, त्यौहार में चल पाए|

कई लोगों के पास खेती की ज़मीन है| यह ज़मीन उनको कुछ दो पीढ़ी पीछे ही मिली है; संभवतः 1960 - 70 के दशक में लेकिन वो उसमें पानी की कमी होते हुए, सब लोग इतनी फसल नहीं निकाल पाते कि उनके लिए कमाई पर्याप्त हो सके| कुछ लोग खुद की खेती के साथ साथ दूसरों की ज़मीन में मज़दूरी के लिए भी जाते है|

राजीव नगर के जवान लड़कों का एक गुट शादी-पार्टी में वेटरगिरी का काम भी करते हैं| इस काम में कमाई सीज़न में होती है, लेकिन लोगों को यहाँ भेदभाव महसूस होता है| उनका कहना था कि शादी-पाल्टी का काम बहुत सीखने के बाद भी पारधी लोगों को सामने के काम नहीं देते हैं जहाँ वो मेहमानों के सामने आयें या अपने हाथ से कुछ सर्वे करें इत्यादि, और पीछे सबसे दूर बर्तन धोने इत्यादि का काम ही मिलता है|

काम में मुश्किलें

अलग अलग काम में आ रही मुश्किलों के बारे में साक्षात्कार में पूछा गया तो कई तरह के जवाब आयें जो यहाँ एकजाही किये गए हैं|

समस्या	संख्या	प्रतिशत
पुलिस की प्रतारना	206	93
मौसम	161	72
कचरा नहीं मिलना	136	61
बीमारियाँ	124	56
घाव लगना	123	55
जातिगत भेदभाव	29	13
और कुछ	7	3

लोगों को एक से ज़्यादा समस्याएं थी, इसलिए जवाब उत्तरदाताओं की संख्या से ज़्यादा है|

पुलिस से परेशानी: अधिकांश उत्तरदाताओं (93 प्रतिशत) का कहना था कि काम के दौरान जो सबसे बड़ी कठिनाई का सामना उन्हें करना पड़ता है, वह है पुलिस।

"पुलिस हमारी सबसे बड़ी समस्या है। पता नहीं चलता कि कब वे सोच लेंगे कि हमें पकड़कर सलाखों के पीछे डाल देना है। हमें पुलिस को बहुत पैसे देने पड़ते हैं, यहां तक कि कर्ज़ा भी लेना पड़ता है। पुलिस द्वारा पैसा ऐंठना सब से बड़ी मुश्किल है।"

नगर निगम द्वारा फुटपाथ पर बेचनेवालों के विरुद्ध मुहिम: जिस दिन नगर निगम के लोग अतिक्रमण तोड़ने आये, उस दिन सभी छोटी-बड़ी दुकानों को तोडा जाता है, और सड़क पर बैठे लोगों को भी भगा दिया जाता है| कोटरा से भावना और उसका पति कई साल से भोपाल के न्यू मार्केट में दुकान लगाते हैं, लेकिन इतने साल के बाद भी आराम से दुकान का दिन चल जाएगा, इसकी कोई गारंटी नहीं रहती| राजीव नगर के कुंवरपाल और चांदनी अपनी 3 महीने की बेटी को लेकर अंगूठी-माला बेचने दूसरे गाँव या शहर जाते हैं, लेकिन वहां भी स्थानीय प्रशासन के लोग उनको दुकान लगाने ही नहीं देते, या सीधा लात मारकर सामान खराब कर देते हैं।

मौसम से उभरती मुश्किलें: क्यौंकि पारधी लोगों का काम बहुत बाहर खुल्ली सड़क से जुड़ा है, इसलिए और बड़ी समस्यायें जो वे महसूस करते हैं, वो मौसम से जुड़ी हैं| जैसे बारिश में बहुत बार कचरा मिलना मुश्किल हो जाता है या गर्मी की कड़ी धूप में काम करने में तकलीफ होती है और बीमार भी हो जाते हैं|

व्यावसायिक जोखिम: लगभग सारी महिलाएं जिस किस्म का काम करती हैं, उसमें काम की परिस्थितियां अलग-अलग स्तर के तमाम जोखिमों से भरी हैं। एक स्तर पर, कचरे में काम करने का मतलब ही है कि आप हर तरह के कचरे – कांच के टुकड़ों, मानव मल और तमाम ऐसी चीज़ों के संपर्क में आते हैं जिनकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। जिस दिन सर्वेक्षणकर्ता एक बस्ती में एक औरत से मिले, उस दिन उसका हाथ सूजा हुआ था। उसने कचरे में से कोई चीज़ निकालने की कोशिश की थी मगर यह नहीं देख पाई थी कि उसके नीचे जंग लगी लोहे की चादर का टुकड़ा पड़ा था। उसने टिटेनस का इंजेक्शन लगाया था। बिजली का करंट लगना भी कई औरतों के अनुभव में आया।

सड़क पर घूमते हैं और कचरे के बीच होते हैं, तो ऐसी परिस्थिति भी बनती है कि लोगों को जानवरों (चूहे, कुत्तों) और साथ ही समाज के अन्य वर्ग के लोगों का सामना करना होता है, चाहे वे उन रिहायशी कालोनियों के बाशिंदे हों जहां महिलाएं कचरा बीनने जाती हैं या सड़क किनारे के दुकानदार हों जहां से वे कचरा उठाती हैं। महिलाओं ने साक्षात्कार के दौरान कई बार बताया कि जब वे दुकान के सामने से निकलती हैं, तो दुकानदार उन्हें भगाते हैं या मारते भी हैं। बंजारी बस्ती की पानीपत बाई ने बताया कि "हम जहां कचरा बीनते हैं, उसके आसपास के दुकानदार हमें उनकी दुकान के सामने पड़े कचरे के आसपास भी नहीं फटकने देते और हमें खदेड़ देते हैं। कभी-कभी हम पीटे भी जाते है।"

कचरे तक पहुँच कम होती जा रही है: इन परिवारों के लिए आजीविका का प्रमुख ज़रिया कचरा बीनना है। लेकिन इसमें भी नयी नयी दिक्कतें आ रहीं हैं| जहाँ एक तरफ कबाड़ उठानेवाले रीसाइक्लिंग की मुख्य कड़ी हैं, वहीं उनको ही कचरा नहीं मिल पा रहा है|

राजीव नगर बस्ती की आयल बाई के मुताबिक, "पिछले कुछ सालों में कचरा बीनने में भी कमाई कम होती गई है। पहले के मुकाबले ज़्यादा कालोनियों और बस्तियों में गेट लग गए हैं; हम इन जगहों में घुस तक नहीं सकते। सड़क से हमें दिखता है कि अंदर बहुत सारा अच्छा कचरा पड़ा है, मगर हम वहां जा नहीं सकते। सब कुछ तेज़ी से बदल रहा है और हम पीछे छूट रहे हैं।"

वही बस्ती की सुतराज का कहना है कि "बेरोज़गारी बढ़ी है और ज़्यादा से ज़्यादा लोग इस धंधे में आ गए हैं| क्योंकि इसमें पूंजी नहीं लगती है, इसलिए जब कुछ और नहीं होता, तो महिलाएं इसमें लग जाती हैं| इसलिए कई बार तो हमें पों फटने से पहले ही काम पर निकलना पड़ता है।"

प्रवास का चक्र

आजीविका की खस्ता हालत और सीमित विकल्पों के चलते अधिकांश पारधी परिवार प्रवास की राह अपनाते हैं। यह उनके लिए बहुत मुश्किल विकल्प नहीं होता क्योंकि घुम्मकड़ समाज-नुमा, लोग एक जगह से दूसरी जगह जाते ही रहे हैं| लेकिन अब इस पलायन में अलग मजबूरियां काम करती हैं| जीवन में एक किस्म का चक्राकार प्रवास होता है।

अलबत्ता, वे जहां भी और जब भी जाते हैं, उनकी आर्थिक गतिविधियों में उसी तरह की विविधता होती है जैसी भोपाल में दिखती हैं। 83.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे अन्य जगहों पर काम के लिए जाते हैं और औसतन 2-3 महीने रुकते हैं।

इस दौरान काम की प्रकृति और समस्याएं तमाम तरह की होती हैं।

परेशानियां	संख्या
पुलिस से परेशानी	126
रहने की मुश्किलें	84
लोग परेशान करते हैं	22
मौसम की दिक्कतें	11
पैसे की मुश्किलें	9

पारधी समुदाय के कमज़ोर हालात इस वजह से और नाज़ुक हो गई हैं क्योंकि उनके पारंपरिक धंधे गैर-कानूनी हो चुके हैं और विमुक्त जाति की उनकी पहचान ने हालात और बिगाड़ दिए हैं। उनको न तो कोई विकल्प उपलब्ध कराए गए हैं और न ही ऐसे विकल्पों तक उनकी पहुंच को सुगम बनाया गया है। उनके लिए न तो कोई विशिष्ट रूप से लक्षित प्रशिक्षण सुविधाएं हैं और न ही ऐसी कोई ऋण सुविधा है कि वे उसका उपयोग करके कोई छोटा-मोटा धंधा या उद्यम शुरू कर सकें।

आजीविका हेतु शासकीय मदद – सरकार द्वारा आजीविका हेतु प्रशिक्षण सुविधा या कोई और शासकीय मदद मिली हो, इस सवाल पर फॉर्म में केवल 3 लोगों ने 'हाँ' में जवाब दिया कि कुआं खोदने के लिए मदद मिली है। यह स्थिति काफी भयानक है कि शासन की असंगठित क्षेत्र के लिए योजनायें या हुनर प्रशिक्षण के दावे पारधी समाज को छू भी नहीं रहे हैं|

मुख्य अवलोकन

श्रमिकों में महिलाओं का अनुपात पुरुषों से कहीं ज़्यादा है

जब यह पूछा गया कि ऐसा क्यों है कि महिलाएं कचरा बीनने को जाती हैं जबकि पुरुष उसी अनुपात में काम पर नहीं जाते, तो आम जवाब यह था कि पुलिस द्वारा पारधी पुरुषों और लड़कों को निशाना बनाया जाता है। अपराधी होने का जो ठप्पा लगा है, उसके चलते पुरुष बस्ती से बाहर नहीं निकल पाते। यदि कोई पारधी पुरुष या लड़का काम की तलाश में या कचरा बीनने के लिए किसी जगह जाए, तो यह मानकर चला जाता है कि वह टोह ले रहा है ताकि बाद में आकर चोरी वगैरह कर सके।

राजीव नगर के 25 वर्षीय जेबी ने बताया, "जब हम जाकर काम के लिए पूछते हैं, तो वे बेधड़क कह देते हैं कि पारधी लोग पहले चोरी करते हैं, और उसके बाद शायद काम करें।"

जेंडर भूमिकाओं में बदलाव तभी तक जब तक कि यह पुरुषसत्ता के हित में है

पारधी परिवारों में देखने को आता है कि महिलाएं और लड़कियां काम पर जाती हैं और नियमित कमाई करके परिवार को पालती हैं, जबकि पुरुष कभी-कभार, अनियमित रूप से काम करते हैं। यह बात को हम जेंडर भूमिकाओं में परिवर्तन के रूप में देख सकते हैं। किंतु इंग्लैंड में मज़दूर वर्ग के इतिहास में एंजेल्स जिस 'जेंडर भूमिका परिवर्तन' की बात करते हैं या जिस ढंग का परिवर्तन हमें 'साल्ट ऑफ दी अर्थ' नामक फिल्म में देखने को मिलता है, उनके विपरीत यहां महिलाएं ही अधिकांश घरेलू काम भी करती जा रही हैं।

श्रम के जेंडर आधारित विभाजन और समुदाय में जो पितृसत्तात्मक धारणाएं तथा प्रथाएं हैं, उन पर कोई आंच नहीं आई है और महिलाएं परिवार के लिए भुगतानशुदा और भुगतानरहित दोनों तरह के काम करती जा रही हैं।

दूसरी ओर, जहां तक पारधी पुरुषों के आत्म-सम्मान का सवाल है तो वह ज़्यादा आहत हुआ है। यह बात निहायत अटकल के स्तर पर है और समुदाय के लोगों के अवलोकनों तथा उनसे की गई चर्चाओं के अलावा

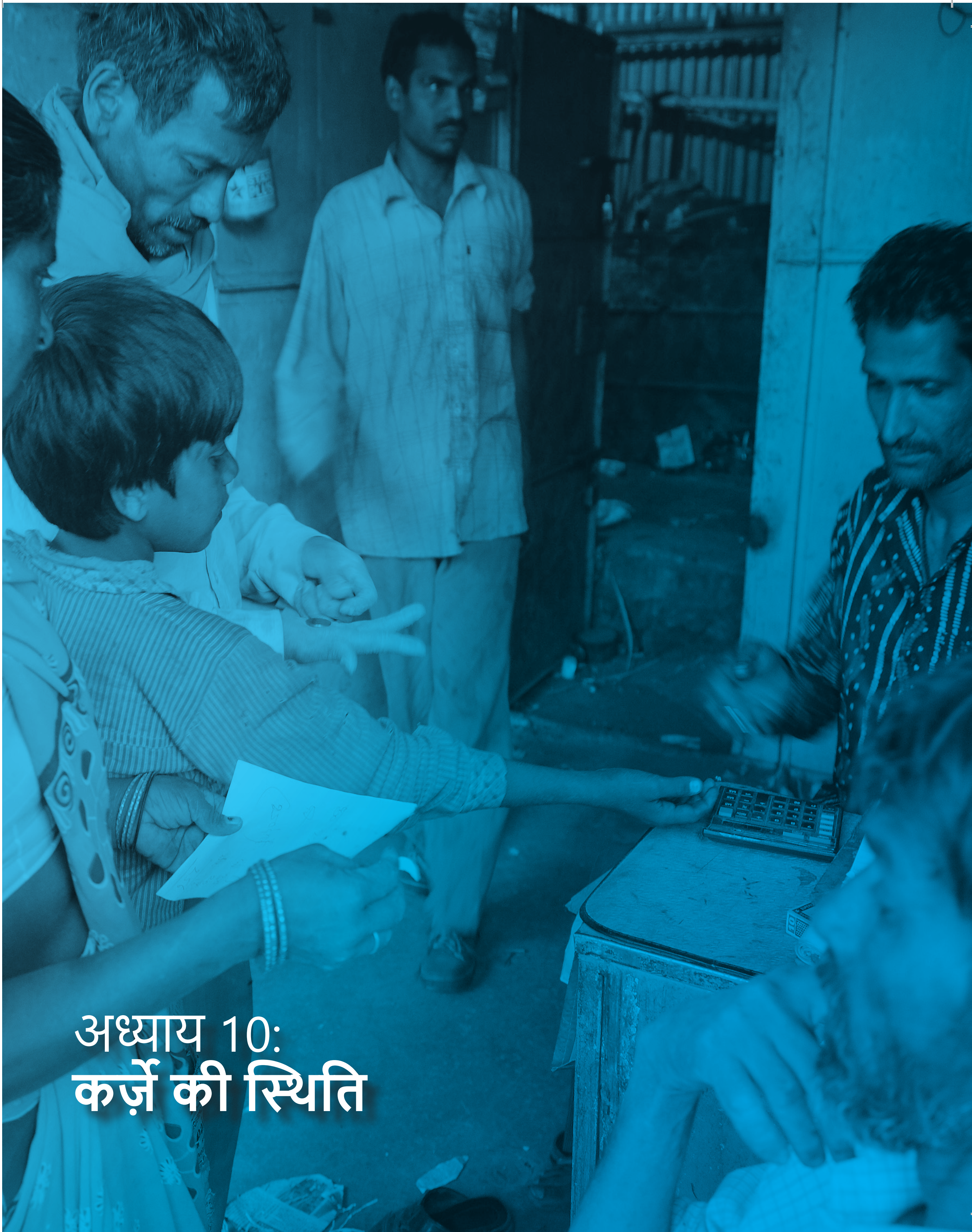
एक महिला कार्यशाला की सघन बातचीत पर आधारित है। अलबत्ता, इतिहास तथा पारधी स्त्री-पुरुषों की जीवन-कथाओं के ज़रिए इस पहलू की ज़्यादा गहरी जांच-पड़ताल की जानी चाहिए।

यह भी देखा जाना चाहिए कि घर के निःशुल्क काम के अलावा भुगतानशुदा काम में पारधी महिलाओं की सघन भागीदारी ने परिवार में उनकी स्थिति को कैसे प्रभावित किया है और क्या घर पर निर्णय प्रक्रिया में उनकी बात का वज़न बढ़ा है, हालांकि प्रथम दृष्टि में तो लगता है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ है। पारधी परिवारों में महिलाओं के खिलाफ हिंसा की घटनाओं से पता चलता है कि परिवार में उनके आर्थिक योगदान का उनकी स्थिति पर कोई सकारात्मक असर नहीं हुआ है।

पूरी श्रम शक्ति असंगठित क्षेत्र में है और रोज़ कमाना खाना सामान्य बात है

समुदाय की आर्थिक वर्जना का अंदाज़ सवैतनिक नौकरी के बारे में पूछे गए सवाल के उत्तरों से लग जाता है। 96.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं का जवाब था कि उनके परिवार में किसी के पास, सरकारी या निजी, कोई सवैतनिक नौकरी नहीं है। यदि थोड़ी गहराई में जाकर देखें कि ये इक्का-दुक्का सवैतनिक नौकरियां क्या हैं, तो पता चलता है कि ये कोई स्थायी नौकरियां नहीं हैं, बल्कि मात्र ऐसी नौकरियां हैं जहां मज़दूरों को रोज़ाना की बजाय महीने में भुगतान किया जाता है। सवैतनिक नौकरीशुदा व्यक्तियों में से एक तो किसी दफ्तर में चपरासी था, एक सिक्यूरिटी गार्ड था।

चार बस्तियों में पारधी समुदाय के साथ एक सामूहिक चर्चा के दौरान एक पुरुष ने समूह से पूछा कि क्या वे अपने परिवार या खानदान में या कहीं भी किसी पारधी व्यक्ति को जानते हैं, जो सरकार या किसी कंपनी में ऊंचे पद पर है। वहां 4 बस्तियों के अनुभवी कार्यकर्ता उपस्थित थे, जो कई गाँव-मौहल्ले के पारधियों को जानते थे, उनमें से किसी ने भी नहीं सुना था कि पारधी समुदाय का कोई व्यक्ति ऐसे पद पर है या स्थायी नौकरी में है।



अध्याय 10:
कर्ज़े की स्थिति

भोपाल में रहवासी पारधी समुदाय के लोग अपनी ज़रूरतों को अपनी कमाई से पूरा कर पा रहे हैं कि नहीं, और किस हद तक कर्ज़े में डूब रहे हैं, यह ढूंढने की कोशिश इस सर्वे में की गई| वास्तविकता समझने के लिए पूछा गया कि क्या ख़ास सर्वे के दिन लोग कर्ज़े में थे, तो समझ आया कि कुछ एक परिवारों को छोड़कर सभी ने गए सालों में क़र्ज़ लिया ही है और करीबन 90प्रतिशत परिवार उस दिन कर्ज़े में थे| यह बहुत ही खतरनाक स्थिति है, और दर्शाती है कि लोग किन मजबूरियों में जी रहे हैं और उनके ऊपर किस किस प्रकार का तनाव काम करता होगा|

कई परिवारों में घर के अलग-अलग लोगों की कमाई से अलग ज़रूरतें पूरी होती है| उदाहरण, औरत की कमाई से खाना खरीदा जाता है, तो एक बच्चे की कमाई से कर्ज़े की किश्त लौटाई जाती होगी और तीसरे व्यक्ति की कमाई से किसी अन्य प्रकार की ज़रूरत पूरी की जाती है|

कर्ज़े की राशि

लोगों के ऊपर कर्ज़े भी कुछ छोटी राशि के नहीं थे, जो किसी की दो-तीन महीनों की कमाई में पूरे हो सकें| लम्बे समयाविधि तक चलनेवाले कर्ज़े और लगातार उठ रही ज़रूरतें परिवारों को हमेशा के लिए भी कर्ज़े की स्थिति में बनाये रखते हैं|

जहाँ 4 में से 1 परिवार (24%) का 1,000 से 25,000 रुपए के बीच की राशि का क़र्ज़ है, तीन में से करीबन हर दो परिवार (63 प्रतिशत) ऐसे हैं जिन पर 25 हज़ार रुपए के ऊपर का क़र्ज़ है| 25,000 के ऊपर के कर्ज़ेवाले लोगों में भी काफी लोगों का कर्ज़ा 50,000 रुपए से भी ज़्यादा था; हर तीसरे परिवार पर 25 हज़ार से 50 हजार तक का कर्जा है| और करीबन उतने ही परिवारों (31 प्रतिशत) के ऊपर 50,000 रुपये से ज़्यादा का क़र्ज़ है|

कर्ज़े की स्थिति	संख्या (प्रतिशत)
कर्ज़ा नहीं है	23 (10.4%)
1000 रूपये तक का क़र्ज़	8 (3.6%)
1000 से 10,000 रूपये के बीच का क़र्ज़	22 (10%)
10,000 से 25,000 रूपये के बीच का क़र्ज़	25 (11.3%)
25,000 से 50,000 रूपये के बीच का क़र्ज़	74 (33.5%)
50,000 रूपये के ऊपर का क़र्ज़	69 (31.2%)

कर्ज़े की ज़रूरत की परिस्थितियां

लोगों को कई सामाजिक कारणों, गरीबी से जुड़े कारणों और कुछ उनकी जाति-विशेष पनपती हुई परिस्थितियों के चलते कर्ज़े लेने हुए हैं| समाज में लोगों ने चार्ट .. में दर्शाए गए प्रमुख कारण बताये जिसमें उन्हें बड़ा कर्ज़ा लेना पड़ा था|

इलाज के लिए - समुदाय के लोग बस्ती के आसपास बसाहट में स्थित निजी चिकित्सक के पास बीमारियों के इलाज़ के लिए जाते हैं| यहाँ खर्चा 100 से 1000 रुपए तक का होता है; अगर आराम नहीं मिलता, तो फिर प्राइवेट अस्पताल का विकल्प अपनाते हैं, जहाँ खर्चे का कोई सीमा नहीं रहती| पारधी समाज में कितनी भी बड़ी मुश्किल हो या कौनसी भी हो, लोग शासकीय अस्पताल में जाने से कतराते हैं| सर्वे में पाया गया कि करीबन आधे लोगों ने स्वास्थ्य की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज़ा लिया है| अध्ययन में यह भी निकल कर आया कि समुदाय के लोगों ने बच्चे की डिलेवेरी के लिए भी कर्ज़ा लिया है|

पंचायत - समुदाय की अपनी पंचायत की व्यवस्था है जो समुदाय के अन्दर के विवादों पर निर्णय लेती है| यहाँ ज़्यादातर बार आर्थिक दंड देने की प्रक्रिया चलन में है| जुर्माने की रकम का एक हिस्सा फरयादी को मिलता है तथा बचा हुआ हिस्सा पंचायत में शामिल नायकों के हिस्से में आता है| समुदाय के लोगों का कहना है कि यह जुर्माना पिछले कुछ सालों में बढ़ता ही जा रहा है, चूँकि नायकों की संख्या ज़्यादा होती है और अलग-अलग बसाहटों से भी नायक पंचायत में भाग लेने आते हैं इसलिए उनका आने–जाने खाने पीने इत्यादि का खर्चा भी पंचायत बुलानेवाले व्यक्ति को वहन करना होता है| दंड की राशि कुछ हज़ार से लाख तक जा सकती है, इसलिए किसी को भी दंड भरना आसान नहीं होता है| एक-तिहाई परिवारों को इस ज़रूरत हेतु कर्ज़ा लेना पड़ा है|

पुलिस - समुदाय में पुलिस एक कारण है जिसके लिए लोग बड़ी मात्रा में कर्जा लेते हैं, 221परिवारों में से 51 परिवारों ने पुलिस को पैसा देने के लिए ये कर्जा लिया है, जो कि 25.8 प्रतिशत है| रिश्वत में बड़ी रकम मांगी जाती है और उस समय 2 लाख रुपए तक क़र्ज़ लेने की बात सामने आ रही थी|

माता माई की पूजा - पारधी समुदाय के लोग चेत महीने (मार्च-अप्रैल) में होनेवाली पूजा को बहुत महत्व देती है| ये पूजा समाज के भीतर परिवार को करना अपेक्षित होता है; पूजा में जानवर चढ़ाया जाता है और समाज के अन्य लोगों को भोज करवाना होता है, जिससे खर्चे बढ़ जाते हैं| जवाब देनेवालों में से 41 परिवारों (18.6 प्रतिशत) ने बताया कि सर्वे के समय उनके ऊपर बकाया कर्ज़े में माता माई की पूजा के लिए लिया गया उधार शामिल है|

काम-धंधे - समुदाय में लोग मनिहारी के काम के लिए गाँव-शहर में लगने वाले मेलों एवं अन्य त्यौहारों पर गुब्बारे, खिलौने, सीटी, चूड़ी धागा इत्यादि बेचने का काम करते हैं| जो लोग खेती पर निर्भर हैं, उनको गरमी के मौसम में कर्ज़े की आवश्यकता होती है क्योंकि तब बीज खरीदने होते हैं| सर्वे के वक्त 5% लोगों ने इस उद्देश्य के प्रति क़र्ज़ लिया हुआ था| अगर सरकार से रोज़गार के लिए उधार उपलब्ध होता तो शायद यह प्रतिशत और अधिक दिखता|

आवास पर खर्चा - पक्के आवास का निर्माण करना एक बड़े खर्चे के

रूप में देखा जाता है; जैसे अध्याय 2 में हमने देखा, यह काम धीरे धीरे पैसे और सामग्री की उप्लब्ध्ता पर कई वर्षों तक चलते रहता है| 30 परिवारों (13%) ने सर्वे के वक्त घर बनाने के लिए कर्ज़ा लेने की बात साझी करी| कुछ लोगों ने यह भी बोला कि शौचालय बनाने के लिए कर्ज़ा लिया था क्योंकि उनको भी कुछ हिस्सा खर्च करना होता है ताकि शासन से इसके लिए कुछ मदद मिले| लेकिन घर के लिए कभी कोई वित्तीय सहयोग नहीं मिला है|

अन्य ज़रूरतें - उपरोक्त को छोड़कर अलग अलग घरों में और विभिन्न प्रकार की ज़रूरतों में कर्ज़ा लेने की नौबत आई थी| कई बार घर में मौत होने पर कर्ज़े की आवश्यकता पड़ी है| कभी लोगों ने दैनिक बचत की प्राइवेट योजना में अपना नाम जोड़ा हुआ है, और उसको समय पर नहीं भर पाने पर और ब्याज लग जाता है, तो लोग इसकी किश्त को चूकते नहीं है और कहीं और से कर्ज़ा ले लेते हैं| बहुत कम बार लेकिन कभी कदार रक्षा बंधन इत्यादि पर मेहमानों के आने पर पैसे की ज़रूरत पड़ती है या कभी बच्चों की कोई ज़िद को पूरा करने हेतु कर्ज़ा लेना पड़ा है| दो परिवारों ने बताया कि बताई गयी तारीख पर ही राशन ले सकते हैं, तो कभी कभी उस दिन पैसे नहीं होते हैं तो कर्ज़ा लेकर उस महीने का राशन लेते हैं ताकि छूट नहीं जाए|

खाने की ज़रूरतों की पूर्ती के लिए कर्ज़ा

रोज़ाना की आर्थिक परिस्थितियों को समझने के लिए भोजन की व्यवस्था के लिए पर्याप्त पैसे होने न होने से जुड़े सवाल पूछे गए| चार में से तीन परिवारों (77.4%) ने कहा कि खाने के लिए भी कर्ज़े लेने की ज़रूरत पड़ती है; कुछ परिवारों को महीने में 1-2 बार तो काफी सारे परिवारों को बहुत बार क़र्ज़ लेना पड़ता है। एक-तिहाई परिवारों को हर कुछ दिन में कर्ज़ा लेकर उस दिन का भोजन बनाना पड़ता है|

महीने में खाने के लिए कर्ज़े लेने की ज़रूरत की बारंबारता	संख्या	प्रतिशत
10 से ज़्यादा बार	29	13.1
6 से 10 बार के बीच	49	22.2
1 से 5 बार के बीच	92	41.6
कभी कदार	8	3.6
जवाब नहीं प्राप्त	3	1.3
कर्ज़े की ज़रूरत नहीं पड़ती	40	18.1
	221	**100%**

बारिश के मौसम में खाने के लिए कर्ज़ा ज़्यादा लेना पड़ता है क्योंकि तब लोगों का न ही कबाड़ का काम चलता है ज़्यादा (कीचड़ होता है, गीले होने का खतरा रहता है और कागज़ पुष्टा गीला हो जाता है) न ही मनिहारी का| लोगों ने यह भी कहा कि इस मौसम में बच्चे व महिलाऐं बीमार भी ज़्यादा होते हैं, इसलिए कमाने नहीं जा पाते हैं|

कुछ लोगों ने यह भी बोला कि दीवाली के त्यौहार तक काफी कमाई की सम्भावना होती है, लेकिन फिर ठंड में भी कमाई कम हो जाती है और खाने के लिए उधार मांगने की नौबत आ जाती है|

कर्ज़े का स्त्रोत और ब्याज का दर

समाज में लोग अपने रिश्तेदारों से पहले कर्ज़ा लेने की कोशिश करते हैं, लेकिन कई बार बाहर से भी कर्ज़ा लेते हैं| ये ऐसे लोग होते हैं जिनसे उनके समाज के लोगों का पहले से ही साहूकारी का रिश्ता चल ही रहा होता है| आपसी कर्जा उधारी के सम्बन्ध मौखिक होते हैं, जिनमें समुदाय के 2-3 लोगों की गवाही के सामने कर्ज़ा लिया-दिया जाता है| अगर एक बड़ी रकम जैसे 20,000 से ऊपर की ज़रूरत होती है, तब रकम 2-3 परिवारों से जोड़कर ही पूरी होती है|

अध्ययन में स्पष्ट हुआ कि आम तौर पर ऋण 3 रुपए से 5 रूपए प्रति सैकड़ा प्रति माह के ब्याज दर पर मिलता है| छोटी रकमों में, जो ज़्यादातर बार रोज़ के खाने के खर्चों के लिए पड़ोसी-दोस्त से लिए जाते हैं, इनमें ब्याज नहीं लगता है| लेकिन कभी कभी लोगों ने 10 और 20 रुपए के मासिक दर पर भी कर्ज़े लिए हैं| एक महिला ने बताया कि उन्होंने पुलिस को देने के लिए 5,000 रुपए उधार लिया था, और दिन का 200 रुपए एक महीने तक देने की बात पक्की हुई थी|

जब बाहर से कर्ज़ा लिया जाता है, तो ज़्यादातर बार कुछ सामान गिरवी रखा जाता है| यह कई बार चांदी या अगर हुआ, तो सोने का भी होता है| अध्ययन में पाया गया कि 24 परिवारों ने चांदी के गहने गिरवी रखे हैं| 5 परिवारों ने चांदी और सोने के गहने गिरवी रखे हैं| 81 परिवारों ने सोने के गहने गिरवी रख कर कर्जा लिया है| 19 परिवारों से बात आई कि ज़मीन के कागज़ गिरवी रखें हुए हैं| 2 परिवारों ने एफ.डी. गिरवी रख के उधार लिया है जबकि एक परिवार ने मोटर सायकिल गिरवी रखी है|

असली आभूषण गिरवी रखना पड़ता है, और नकली पहनकर शौक पूरा करते हैं|

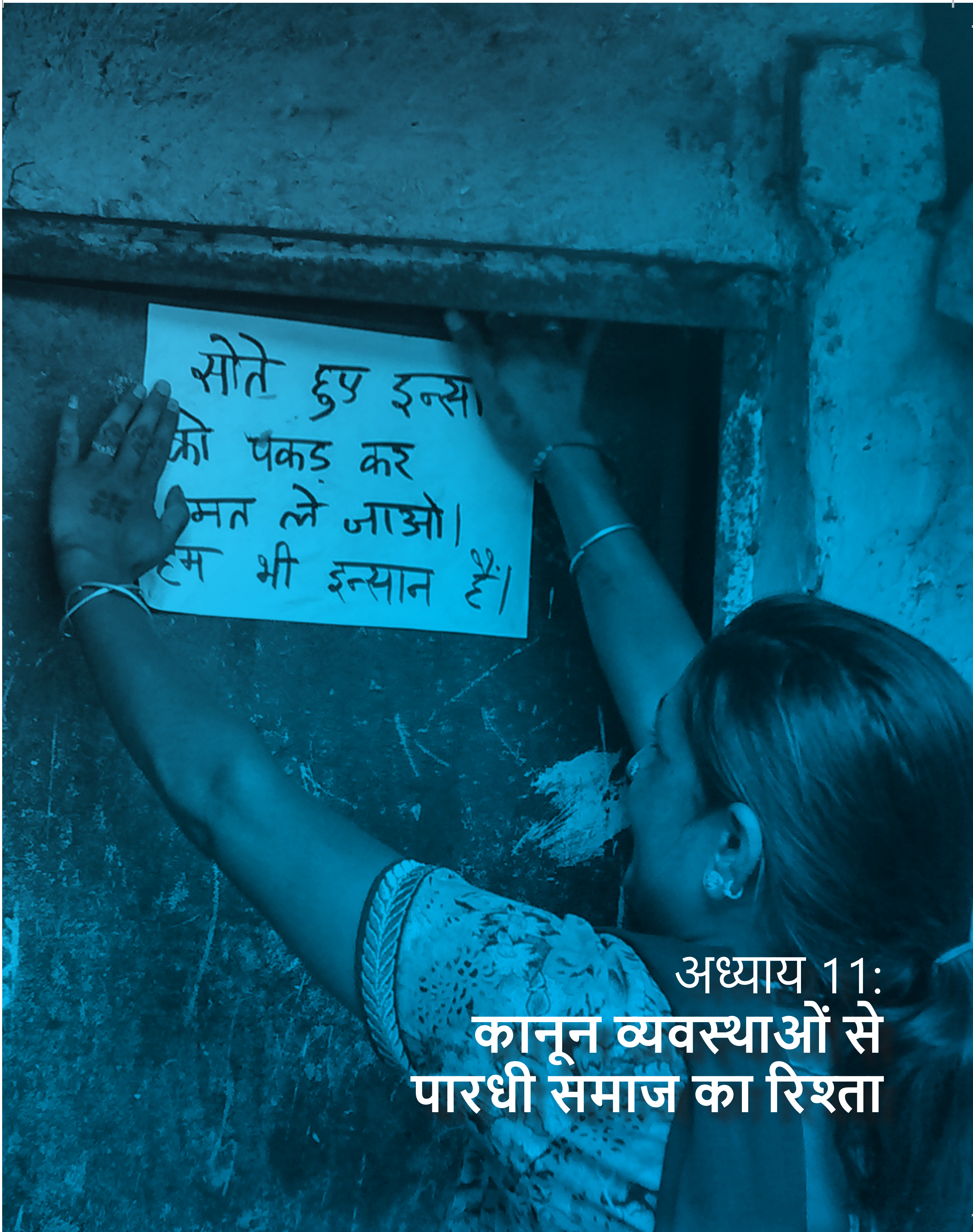
एक साल गाँव की ज़मीन बेचकर वकील को पैसे दिये थे| इस साल बाइक दे दी|

बहुत बार लोग कबाड़ी से कर्ज़ा लेते हैं, तो अपने आप को ही उस कबाड़ी से बांधना पड़ता है, कि वो अपना रोज़ का (बीनकर इकट्ठे किया हुआ) माल उसी कबाड़ी के यहाँ दिया करेंगे| इस रिश्ते में कभी कभी वो फंस भी जाते हैं क्यौंकि फिर वो कहीं बेहतर रेट पर अपना कबाड़ बेच नहीं पाते हैं| लेकिन कबाड़ी की बहुत एहम भूमिका भी है क्योंकि यह इन्सान हमेशा कर्ज़ा देने के लिए उपलब्ध भी होता है|

टिप्पणी

सर्वे के इस हिस्से से जुड़ी चर्चाओं में स्पष्ट निकला कि लोगों को कभी भी बैंक से या किसी भी सरकारी योजना के मार्फ़त अपने विकास हेतु उपलब्ध लोन नहीं मिल पाया है| केवल गाड़ी (बाइक या ऑटो) खरीदने की परिस्थितियों में कुछ लोगों ने यह एजेंसी की मदद से इसे फाइनेंस करा पायें और किश्त पर ले पाने की सम्भावना बनी|

यह भी समझ आया कि लोगों के कई बार कर्ज़े सालों तक चलते हैं| कभी भी पर्याप्त पैसे होने की स्थिति नहीं बनती और परिवारजन कर्ज़े के बोझ में ही ज़िंदगी जीते रहते हैं| यह एक तनाव का कारण भी बनता है क्योँकि एक वित्तीय बोझ के साथ साथ, कभी भी कर्ज़े देनेवाले गाली देकर बात करने लगते हैं| यह भी दिखता है कि परिवार के कमानेवालों को कभी भी छुट्टी नहीं मिलती है न ही वो अपने विकास के लिए वक्त निकाल पाते हैं|



अध्याय 11: कानून व्यवस्थाओं से पारधी समाज का रिश्ता

1871 के अपराधिक जाति कानून के अंतर्गत लाये जाने के चलते, पारधी समुदाय का उपनिवेशी काल से लागातार ही पुलिस से नाता पड़ता आया है, और कभी कभार अदालत से| साथ ही शिकार और वन पर आधारित इस समुदाय की नोक-झोक वन विभाग से भी तब से पड़ने लगी जब वन संरक्षण कानून 1972 में लागू हुआ| रिपोर्ट के इस हिस्से में पारधी समुदाय का पुलिस, कोर्ट और वन विभाग के सरकारी संस्थानों के साथ जो रिश्ता है, उसके बारे सर्वे से उभरी जानकारी को लिखा गया है।

पारधी समुदाय और पुलिस

पारधी समुदाय के जीवन के हर हिस्से में पुलिस का प्रभाव दिखाई देता है। कोई पारधी काम पर जाए, या कोई घूमने जाए, या खुशी से नए बूट पहनकर दोस्तों के साथ मटरगश्ती को निकले, या घर में ही रात को सोई हो, पुलिस कभी भी आ कर धर दबोच सकती है। बल्कि यह कहना ज़्यादा सही होगा कि ज़रूर धर दबोचती है।

लोगों पर केस

सर्वे के समय 221 में से 104 (47.5%) घर ऐसे थे जहाँ पर किसी परिवारजन पर कोई न कोई केस लगा हुआ था। ज़्यादातर केस चोरी, तीतर-खरगोश पकड़ना और चाकू-छुरी रखने से जुड़े हैं। कुछ छः घरों में लोगों ने बताया कि उनके ऊपर केस आपसी लड़ाई-झगडे से जुड़े हैं|

केस का प्रकार	कितने लोगों पर	प्रतिशत
तीतर का शिकार	29	13.1
चोरी का	78	35.3
चाकू-छुरी का केस	38	17.2
कोई केस नहीं	117	52.5

एक व्यक्ति पर एक से ज़्यादा केस भी हो सकते हैं, इसलिए योग 100 प्रतिशत से ज़्यादा है।

पुलिस का लोगों को उठाना

78% घरों के साक्षात्कारों में मालूम हुआ कि उस घर के लोगों को कभी न कभी पुलिस ने उठाया है| कई घरों में परिवार के लगभग सब सदस्यों ने थाने में पूछ-ताछ और मार-पिटाई के चलते थाने में रहे हैं, लेकिन केस से बहुत बार बच पाए हैं|

बहुत लोगों का कहना था कि बिना वजह उठा लेते हैं और फिर कुछ भी इल्ज़ाम लगाते हैं।

"मैं सब्ज़ी लेने गया बाजार तो उठा लिया था।"

"नए कपड़े पहने थे. तो पुलिस ने बाजार में रोक लिया। बोले कहाँ से कपड़े चोरी करे हो?

यहाँ पास में कहीं चोरी हो जाए, तो तुरंत पारधी मोहल्ले पर धावा बोल देते हैं और फंसाते हैं।"

यही समझ आता है कि पुलिस का पारधियों के प्रति जो नज़रिया है, यह उसका ही नतीजा है। कई बार पुलिस लोगों को बीनने के रास्ते पर से या घर से ले जाती है और केस लगाने की धमकी रहती है| धमकी होती है कि इल्ज़ाम लगाया जाएगा अगर पैसे नहीं दिये जाए|कोई काम ढूँढने जा रहा है याकोई शादी-पार्टी में वेटरगिरी का काम करके रात को देर से लौट रहा हो तो पुलिस पकड़ लेती है। कभी-कभी शादी का खाना दिखखाना पड़ता है ताकि यह साबित कर सकें कि शादी में काम करके लौट रहे हैं, नहीं तो रात को घूमनेवाला पारधी शक की नज़र से ही देखा जाता है।

पुलिस थाना और समुदाय के लोगों के चक्कर

वैसे समाज में लोगों का पुलिस से वास्ता तभी होता है जब कोई परेशानी की स्थिति है, या तो खुद किसी अपराध से पीड़ित हुए हैं, या अपराधी की श्रेणी में पुलिस थाने बुलाये गए हैं, या ऐसे किसी स्थिति में जब उनके परिवार के व्यक्ति फंसा हो और उनके चिन्तक नुमा कोई थाने जाता है| यह मुख्यधारा समाज के सदस्यों के लिए कम ही होता है, न के बराबर| पारधी बसाहट में इस स्थिति को समझने के लिए सर्वे में दो तरह की जानकारी लेने की कोशिश की गयी – 1) परिवार से कितनी बार थाना जाना हुआ है और 2) पुलिस का घर में कितनी बार आना हुआ है|

221 परिवारों में से केवल 27 परिवारों के लोग (12%) कभी पुलिस स्टेशन नहीं गए थे। 24 (11%) ने कुछ जवाब नहीं दिया। बाकी सारे परिवार के लोग (77%) पुलिस थाने के चक्कर काट चुके थे। साथ में यह भी गौर करने की बात है कि बहुत बार जाना पड़ा हैं, ऐसे कभी कदार नहीं| किन्हीं लोगों ने ऐसे जवाब दिये - *"40-50 बार गए होंगे", "हज़ार बार गया हूँ।"*

परिवार के किसी सदस्य को कितनी बार पुलिस स्टेशन में जाना पड़ा है?	परिवारों की संख्या
कभी नहीं	27
1 से 2 बार	45
2 और 10 बार के बीच	94
10 और 40 बार के बीच	10
बहुत बार	21
जवाब नहीं	24
टोटल	221

पुलिस थाने में पुलिस से घिरे रहना और एक भयानक माहौल से गुज़रना और लगातार प्रताड़ित होते रहना, पारधी समुदाय के सभी उम्र और

लिंग के लोगों के जीवन का हिस्सा है| छोटे बच्चों का भी थाने के चक्कर काटना आम बात है| पूछने पर लोगों ने बताया कि बच्चों का भी थाने जाना होता हैं – या तो खुद हिरासत में होने की वजह से या अपने घरवालों के इंतज़ार में या खाना पहुँचाने के लिए|| जब पूछा कि कौनसे बच्चे हैं जो कभी थाने नहीं गए, तो जवाब काफी दिलचस्प थे - *"मेरी डेढ़ साल की बच्ची", "मेरा पोता, जो गोद में है", मेरा तीन साल का भाई"|*

एहसान नगर की अन्जुश बाई को जब जेल में भेजा गया तब उसका बच्चा सिर्फ 7 दिन का था। वो बच्चा तो कुछ महीने माँ के साथ जेल में ही रहा।

राजीव नगर का भवराज जब 13-14 साल का था और राजीव नगर का ही तस्वीर जब वो 8–9 साल का था, दोनों पुलिस के हाथों बहुत पिट चुके हैं। ऐसे और भी बहुत सारे बच्चे हैं जिन्होंने पुलिस की मार खाई है और आए दिन खाते रहते हैं।

राजीव नगर की ही संजोतना है, जिसका बच्चा बिना-माँ का ही पला। संजोतना को पुलिस पकडकर ले गई थी और उसका नवजात शिशु अपनी दादी के घर बिना माँ का पलता रहा।

राजीव नगर की ही हीरोइन नामक महिला का 1 साल का बच्चा कुनाल 1 साल का था जब उसे जेल में माँ के साथ रहना पडा।

घर में पुलिस का छापा मारना

पुलिस स्टेशन में जो तकलीफें दी जाती हैं वह तो है ही, लेकिन पुलिस का जब चाहे पारधी बस्ती में आकर घरों में घुसकर लोगों को पीटना, खींचकर पुलिस थाने ले जाना, पैसे देने की ज़बरदस्ती करना वगैरह भी आम बातें हैं।

पुलिस बहुत बार पारधियों के घरो में बिना वारंट के घुसती है। जब पूछा कि पुलिस घर पर कितने बार आती है तो कुछ जवाब इस तरह आए:

"आते-जाते रहते हैं।"
"जब चाहे तब आ जाते हैं।"
"उनका ही घर है. रात के दो बजे भी आ जाते हैं।"
"सीधा अन्दर आ जाते हैं।"

एक तरफ 221 में से 15 लोगों (6.7%) ने कहा कि उनके घर पुलिस नहीं आई है, दूसरी तरफ 138 लोगों (62%) के घर में पुलिस काफी बार आई है और वे परेशान होते रहते हैं।

पुलिस आपके घर सबसे आख़िरी बार कब आई थी?	लोगों की संख्या
आजकल/इस हफ्ते	66
इस महीने	15
पिछले 6 महीनों में	46
6 महीने से ज्यादा हुए	11
नहीं आई	15
पता नहीं/जवाब नहीं दिया	68
टोटल	221

लोगों की बात से स्पष्ट है कि एक-तिहाई पारधी परिवारों का पुलिस का घर में आने का खतरा बना ही रहता है और उनके घर में किसी भी समय घुसने की स्थिति होती है| लोग अपने घर में भी सुरक्षा के भाव से नहीं रह सकते हैं| देश के कुछ हिस्सों की जनता के लिए और पूरे देश में कुछ समुदायों के लिए उनके संवैधानिक अधिकारों का हनन लगातार होता है|

पुलिस द्वारा शोषण, खासतौर औरतों के साथ

पुलिस स्टेशन में मार पिटाई और गाली गलोच का अनुभव तो आम बात रही हैं लेकिन सर्वे में यह भी निकला कि पुलिस द्वारा पैसे ऐंठना और यौनिक हिंसा की श्रेणी की वारदातें भी थाने में घटती हैं। बहुत लोगों से पुलिस के साथ ऐसे अनुभवों की वारदातें सामनेआयीं -

धमकी देना	मार-पिटाई	पैसे वसूलना	महिलाओं को बूरी नीयत से छूना	जातिगत कुछ बोलना	अन्य
129	180	168	61	79	46
58.4%	81.4%	76%	27.6%	35.7%	20.8%

इसको देखते हुए अचरज की बात नहीं है कि पारधी और पुलिस के नाते के बारे में खुल्ले सवाल पूछने पर लोगों ने काफी गुस्से में जवाब दिए।

"बहुत खतरनाक रिश्ता है। अरे, सब्जी के पैसे जेब में रखे रहते हैं, पुलिस वाले सब पैसे छीन लेते हैं और मार-पिटाई भी करते हैं।"

"पारधी और पुलिस का रिश्ता दुश्मनी का है। अगर हम आठ बजे बाहर खड़े रहते हैं तो पुलिस आती है, पूछती है कौन हो, पारधी हो और पकड़कर ले जाती है।"

राजीव नगर की टिन्टी बाई सिर्फ 14 साल की थी जब उसे पुलिस ने पकड़ा। पुलिस स्टेशन में उसके साथ हुई यौनिक हिंसा पश्चात् वह वापिस घर आई और सीधा खुद को फांसी लगा ली | कमला नगर पुलिस थाना, टी टी नगर पुलिस थाना, कोलार पुलिस थाना और बहुत सारे पुलिस थानों में औरतों ने खराब तरह के बर्ताव का अनुभव किया है।

`हमारे साथ कितने रुपये में आएगी?' ऐसे इशारे पुलिस ने किए हैं। ऐसा अनुभव जवान लड़कियां और औरते बताती हैं। कोलार थाने के बारे में महिलाओं ने बताया कि रात के वक्त पुलिस शराब पी कर आई थी और एक महिला को पुलिस थाने में रोककर रखा था।

बंजारी की संथुबाई को सिर्फ शक की बुनियाद पर खूब पीटा। उनके शरीर पर पट्टे के निशान तक थे। उन का बोरा जब लोगों ने खोला तब कुछ भी नहीं पाया। बहुत सारी औरतें जब पेट से थी, तब भी पिट चुकी हैं। संथुबाई कहती हैं: "`जब बड़े घर की औरत पेट से होती है, तब उसको बहुत सम्हाला जाता है, प्यार दिया जाता है। लेकिन गरीब पारधी औरत को बेरहमी से पीटने से नहीं चूकते।"

पारधी समुदाय और कोर्ट-कचहरी

जैसे पारधी समुदाय का पुलिस के साथ रोजमर्रा का अनुभव है, वैसे ही कोर्ट कचहरी का भी है, हालांकि थोड़ा कम है, क्योंकि काफी बार पुलिस केस को कोर्ट तक ले ही नहीं जाती, बाहर ही पैसे लेकर केस रफा-दफा कर देती है। फिर भी बहुत लोगों को कभी ना कभी कोर्ट और वकील से रूबरू होना ही पड़ता है। वह अनुभव क्या है, कैसा है, यह देखने की कोशिश की गई है। वकील और जज के साथ पारधी समुदाय के अनुभव यहाँ सामने रखे हैं| मूलतः यह देखने को मिला कि कोर्ट की प्रक्रिया में पारधी समुदाय को कोई पारदर्शिता नहीं लगती है। इसलिए कोर्ट-कचहरी पर भरोसा नहीं होता।

वकीलों के सन्दर्भ में 25 लोग ऐसे थे जिनका अनुभव ठीक-ठाक और अच्छा रहा। और 23 और लोगों का सोचना था कि पैसे देते रहो, तो पैसे लेकर ज़मानत करवाते हैं या केस लड़ते हैं। अन्य लोगों को लगता है कि वकील पैसे ठगते ज़्यादा पैसे लेते हैं, कई लोगों को अपमान का अनुभव हुआ और उनको महसूस होता है कि वकील भी कहीं ना कहीं पारधियों को चोर ही समझते हैं।

वकीलों के साथ अनुभव कैसा रहा?	कितने लोगों ने कहा
ठीक-ठाक/अच्छा/मदद करते हैं	25
ठीक नहीं/सख्त	16
अपमान करते हैं/चोर बोलते हैं	19
पैसे ठगते हैं/पैसे लेते हैं	101
पता नहीं/अनुभव नहीं/नहीं	11
दुश्मन है	9
पैसे लेकर जमानत कराते हैं	23
कोई रवैया नहीं	2
कुछ कहा नहीं	15
टोटल	221

"पुलिस और वकील तो एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं।"
"पैसे ज़्यादा चाहिए तो डराते धमकाते हैं।"
"वकील का रवैया – ज्यादा पैसे ऐंठना और गाली गलोच करना।"
"वकील पैसे ज्यादा लेता है क्योंकि पैसे देने के बाद भी पेशी लगा देता है|"
"पैसे ज्यादा चाहिए, डराता है, धमकाता है।"

सर्वे में जज के साथ के अनुभव पूछे गए, तो समझ आया कि जितना अनुभव वकीलों के साथ पारधी समुदाय का है, उससे काफी कम अनुभव जजों के साथ है; यह एक तरह से स्वाभाविक ही है क्योंकि उनसे तो कम ही बात सीधे सीधे होती है। इस कारण लोगों ने जितना वकील के बारे में सोचा था, उतना जज के बारे में नहीं सोचा था, ऐसा साक्षात्कार में दिये जा रहे उत्तरों से समझ आता है। फिर भी अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने जो साझा किया, उससे हम यह सोचने पर मजबूर होते हैं कि हमारी जनतांत्रिक/संवैधानिक संस्थाएं गरीब और वंचित समाज को शक्ति और विश्वास नहीं दिला पा रहे हैं।

सिर्फ 19 लोगों (9%) को लगता है कि उनको इन्साफ मिल सकता है। इन लोगों ने जो सकारात्मक कहा, वह इस प्रकार था कि आरोप के मुताबिक सज़ा देते हैं या जैसा केस है, वैसा फैसला सुनाते हैं| 221 में से 167 (75% से ज़्यादा) लोगों के जवाबों में यह आया कि उनकी अनुसार यह न्याय व्यवस्था पारधी समुदाय को इन्साफ नहीं दिला सकती।

"जज पारधियों को चोट्टे समझता है, चोर बोलता है।"
"पारधियों का नाम सुनते ही जज सीधा जेल कर देता है।"
"जज पारधियों से बात ही नहीं करते। चलान डायरी देखते हैं और सजा सुना देते हैं।"
"बच्चों के कोर्ट के जज भी बच्चों के साथ बात नहीं करते।"

वन विभाग

पारधी समुदाय हज़ारों सालों से तीतर-बटेर-खरगोश का शिकार करते आ रहे हैं। पारधी की पहचान ही शिकारी की है। भारत सरकार ने 1972 में वन संरक्षण अधिनियम लागू किया जिसके तहत शिकार करना गैर-कानूनी हो गया। तो लाखों लोगों की आजीविका ही गैर-कानूनी हो गई। दूसरी ओर, उस समुदाय को नए कौशल देना, शिक्षा की ओर उनकी रुचि को पनपने देना, जैसे कदम सरकार ने न तो उस समय उठाए थे और न अब उठा रही है। नतीजा यह है कि पारधी जैसे समुदाय हाशिये पर आ गए।

कभी कभी और कोई विकल्प ना होने के कारण कुछ पारधी लोग शिकार करने को जाते हैं। उनके जो कौशल हैं - जाल और पिंजड़े बनाने के, तीतर–बटेर पकड़ने के, उनका इस्तेमाल करने का मन भी

होता है। क्योँकि अब यह अपराध की श्रेणी में आता है, वन विभाग के अफसर लोग उनको पकड़ते हैं और उन पर केस भी लगाते हैं। मध्य प्रदेश के और जिलों में पारधियों के गुटों को शेर के शिकार करने की आख़िरी कड़ी में पकड़ा गया है| साथ साथ ऐसी वारदातें भी हैं, जहाँ वन विभाग के लोग ही इनसे तीतर-बटेर-खरगोश भी लेते हैं।

यह पूछने पर कि नाकेवालों ने आपको कभी पकड़ा है, मालूम हुआ कि 61 (28%) परिवारों में लोगों को नाकेवालों ने गिरफ्तार किया है। यदि गिरफ्तार नहीं होना हो तो रिश्वत देना पड़ता है – कभी पैसे देने पड़ते हैं या कभी तीतर-बटेर देना पड़ता है। 75 (34%) लोगों ने पैसे के रूप में रिश्वत दी है जबकि 86 (39%) लोगों ने तीतर-बटेर दिए हैं। हो सकता है कुछ लोगों से दोनों तरह से रिश्वत ली गई थी।

शिकायत

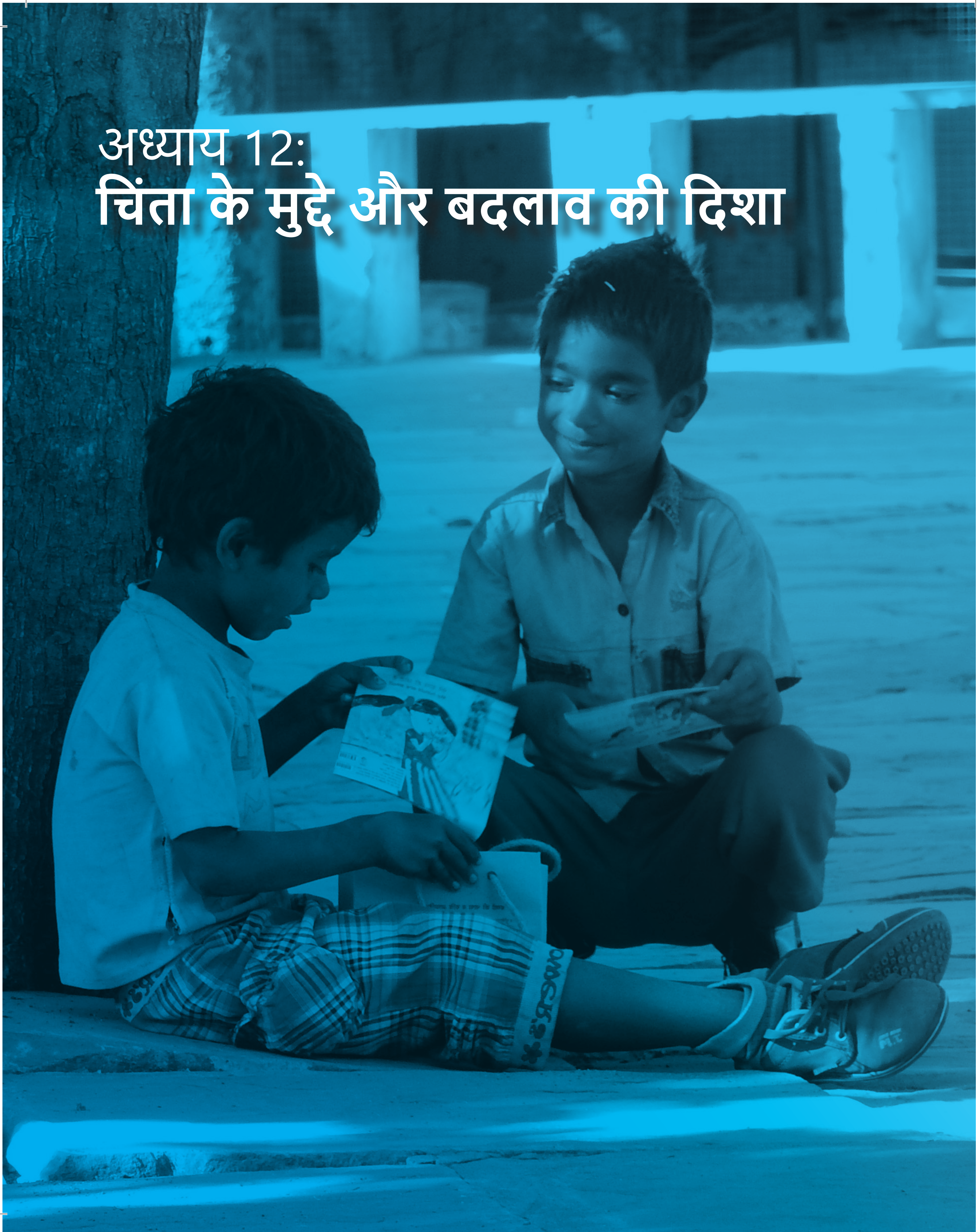
जब कोई समुदाय हाशिये पर होता है और समाज व शासन उनके सब अधिकारों का हनन करने पर तुले होते हैं, तो यह भूल जाना स्वाभाविक लगता है कि हमारे भी कुछ अधिकार है और शासन की हमारे प्रति भी कुछ ज़िम्मेदारी है। अतः इतनी तकलीफों के बावजूद, 68 (31%) लोगों ने कहीं शिकायत की थी।

जिन 31% लोगों ने कुछ करने की कोशिश की थी, उनमें से किसी ने थाने में तो किसी ने ग्राम पंचायत में शिकायत दर्ज की थी; इसके साथ साथ कई मुख्य मंत्री और जन सुनवाई में गये थे।

ज़्यादातर शिकायतें पुलिस के बर्ताव और अत्याचार से सम्बंधित हैं। बाकी कारण थे राशन कार्ड के लिए, जाति प्रमाण पत्र के लिए, घर या ज़मीन के मामले में, लड़की के ससुराल की मुश्किल, छेड़खानी के खिलाफ, पडोसियों से झगड़ा वगैरह।

लेकिन बहुत कम लोगों को कुछ हासिल हुआ है| 6 लोगों ने कहा कि कुछ हासिल हुआ है, लेकिन विस्तार से नहीं बताया। 2 लोगों ने कहा कि शिकायत दर्ज़ करने के बाद पुलिस का बस्ती में आना कम हुआ। एक ने कहा कि जन सुनवाई में शिकायत दर्ज करने के बाद एक तकलीफ देनेवाला पुलिसवाला सस्पेंड हो गया। दो लोगों ने अदालत में केस किया है, तो उनमें से एक को पता नहीं था कि केस का क्या हो रहा है, एक का केस चल रहा है।

अध्याय 12:
चिंता के मुद्दे और बदलाव की दिशा



कई चिन्ताजनक परिस्थितियां हरेक अध्याय में स्पष्ट ही दिख रही हैं; इनसे हटते हुए यहाँ और पहलुओं को रखा जा रहा है -

वर्तमान पीढ़ियों के लिए बहुत उत्थल-पुत्थल और स्थिरता का कोई आधार नहीं उपलब्ध

पारधी समाज में अभी की पीढियां एक बहुत अनिश्चित्ता के दौर से गुज़र रही हैं; अंग्रेज़ों के काल में उनको अपराधिक श्रेणी में डाला तो गया था लेकिन फिर भी वे भोपाल रियासत में नवाबों के समय अपने शिकार के कौशल को इस्तमाल कर काफी हद तक जीवन-यापन कर पाते थे| उनकी जड़े जंगल से जुड़ी ही थीं क्योंकि तब तक जंगल से छोटे जानवर पकड़ने एक जुर्म नहीं था|

लेकिन वाइल्डलाइफ संरक्षण कानून, 1972 के बाद उन्होंने बहुत कुछ खोया है| जीवन यापन के पुराने तरीके ख़तम हो गए और नए ज़माने में उनकी कोई जगह भी नहीं है और वर्तमान समय में जीने के लिए उनके पास कोई ठोस हुनर भी नहीं है जिससे कि वे अपनी ज़िन्दगी की गाड़ी को थोड़ी आसानी से हांक सकें| एक तरफ उन्हें उनकी संस्कृति अनुसार जीवन-शैली से उनको हटा दिया गया है और दूसरी ओर उनकी वास्तविकताओं के अनुसार इस समाज में उनके लिए आज जगह या मौके ही नहीं बन पा रहा है| इस तरह की अस्थिरता में वर्तमान पीढ़ी खुद को फसी हुए पाती है|

अध्ययन में देखा गया है कि कई क्षेत्रों में जंगल पर आधारित समुदायों की जंगल तक पहुँच रोके जाने से कुछ आदिवासी समुदाय सांस्कृतिक तौर से खो जाते हैं और कुछ बिलकुल धुल जाते हैं, कुछ हाशिये-किसान बन जाते हैं, तो कुछ भीख माँगने पर मजबूर हो जाते हैं और शहरों में एक बोझ-नुमा कच्ची बस्तियों में रहनेवालों में जुड़ जाते हैं, जिनके लिए कोई सम्मानीय काम मिलना असंभव होता है|

शहर को समाज के इस समूह के लिए उपयुक्त जगह बनाने की ज़रूरत है

पहले घुमक्कड़ समाज के लोगों का काम एक घुमक्कड़ जीवन से कमाई करने पर निर्भर था किन्तु अब वो धंधे वर्तमान में ख़त्म हो गए हैं| मजबूरी की विभिन्न परिस्थितियों में लोग शहर की तरफ अब स्थांतरित हो ही गए हैं| लोगों का गाँव से रिश्ता अब बहुत ज़्यादा आर्थिक रूप से नहीं, वरन भावनात्मक रूप से जुड़ा है| भोपाल के क्षेत्र में पुश्तैनी जड़ों के होने के बावजूद लोग अभी भी स्थायी पंजीयन की ज़मीन पर नहीं रह रहे हैं और घरों की ढांचागत स्थिति कई बस्तियों में कमज़ोर है| 5 में से 3 परिवारों से यही समझ आया कि वर्तमान जगह के पूर्व वे भोपाल शहर के ही किसी हिस्से में रहते थे और वहाँ से विस्थापित होकर वर्तमान जगह में रह रहे हैं| यह स्थिति विभिन्न घुमक्कड़ समाजों की बन रही है; आज सभी शहरों में भीख मांगने वाले लोग हमें इन्हीं समुदायों के स्पष्ट दिखते हैं| रेल में सामान बेचने वाले भी ज़्यादातर इन्हीं समाजों के लोग हैं|

अब चूंकि गाँव की तरफ अब उनके लिए बहुत कुछ रह नहीं गया है, और वे अब अपना घुमक्कड़-नुमा जीवन नहीं देखते, अतः शहरों में पारधी के जीवन की परिस्थितियों के लिए अनुकूल माहौल बनाना आवश्यक है| जिन बस्तियों में वे आज रह रहे है उन बक्स्तियों को क़ानूनी रूप से वैध किया जाए और उन्हें उस ज़मीन का मालिकाना हक़ दिया जाए और उन बसाहटों में मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएं ताकि उनके जीवन में स्थिरता आ पाएं और वे भविष्य के सपनों को साकार करने की दिशा में अग्रसर हो पाएं|

मुम्बई में पारधी बसाहटों के अध्ययन में पाया गया कि दो से तीन पीढ़ियों से मुंबई रहते रहते लोग अब इसी शहर को अपना 'मुल्क' बोलने लगे हैं और घुमक्कड़ व विमुक्त समुदायों के लिए बनाई जा रही नीतियों में पलायन को उल्टाने के प्रयास की जगह शहरी निवासियों नुमा उनको मानते हुए उनके जीवन में उभर रहे मुद्दों को हल करना चाहिए|

गाँव से और क्षेत्रों से खदेरने के अनुभव

पारधी समुदाय को कई बार अपनी मूल जगहों को रातोरात उठी मजबूरी में छोड़ना पड़ा है| सर्वे में समझ आया कि जब भी एक मिश्रित गाँव में रहते हैं, तब पारधी अपने ऊपर किसी भी वक़्त अप्रत्याशित हमले की आशंका के बीच ही अपना जीवन जी रहे होते हैं| उच्च जातियों से विवाद होने पर या ज़मीन हड़पने की मंशा से पारधी बस्ती को जला देना, उनकी ज़मीनों पर कब्ज़ा कर लेना, महिलाओं के साथ यौन उत्पीडन, सामूहिक बलात्कार जैसी खबरे पढ़ने और सुनने में आई| किसी एक व्यक्ति की गलती पर पूरे समुदाय को निशाना बनाया जाता है और इस तरह के अत्याचारों पर प्रशासन का भी मूक समर्थन होता है| यही वजह है कि ये लोग सुरक्षा की दृष्टि से समूहों में रहते है, कोई भी परिवार अकेले नहीं रहता| मीना राधाकृष्णन ने सिख दंगों के दौरान सिगलीगर और बंजारा समुदायों की बस्तियों पर हमलों को उनको विमुक्त समाज के होने से खतरे बढ़ने की बात रखी और यह भी स्थापित किया कि ज़मीन के बढ़ते दामों के लिए ज़मीन खाली कराने की स्थिति बनी|

इन हालातों में सरकार द्वारा पारधी उर दूसरे विमुक्त समुदायों के सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार को सुनिश्चित करने की दिशा में ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें भी देश के अन्य नागरिकों की तरह स्वाभिमान के साथ जीवन जीने के अवसर मिल सकें| साथ ही साथ हमें पारधी समुदाय की सामाजिक स्वीकार्यता के भी प्रयास करने की आवश्यकता है, जिससे दूसरे समाज में उनका आना जाना होने लगे और वे अपने आपको समाज से कटा हुआ न महसूस करें|

कमाई की अनिश्चित्ता जीवन के मौकों को असर करता है

जब लोगों का जीवन जंगल और प्राकृतिक स्रोतों पर निर्भर था, उस वक़्त कमाई नियमित थी और जीवनयापन बहुत खर्चीला नहीं होता था (क्योंकि बीमारी कम होती थी और देसी इलाज के रास्ते पर्याप्त थे, भोजन की व्यवस्था भी हो जाती, पुलिस व पंचायत के खर्चे भी आज के स्वरूप के नहीं थे)| किन्तु आज की वास्तविकता बहुत अलग है| वर्तमान में कोई नियमित काम न होने व किसी कौशल/हुनर का न होने की वजह से इनकी कमाई में बहुत ही अनिश्चितता होती है| जिन परिवारों के पास है भी गाँव में खेती की ज़मीन, वे भी पानी की कमी के चलते एक फसल मुश्किल से निकाल पाते हैं, और कभी कभी बारिश के बदलते रूप के चलते पूरा नुकसान भी सहना पड़ा है|

काम और कमाई की अनिश्चितता के चलते जो भी खर्चे हो रहे हैं, वे रीतियों की पूर्ति या जीवन को आज जी पाने की ज़रूरत की पूर्ति में ही हो रहे हैं| और जीवन के लिए कोई भी योजना बना पाना मुश्किल होता है| जब जीवन इन्ही प्रकार की ज़रूरतों में जूझता हुआ दिखता है, बच्चों को पढ़ाई या ऐसी कोई भी नियमित गतिविधि के लिए बचत की ही नहीं जा सकती|

अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों में भी यही पाया गया है कि गरीबी लोगों को व्यवहार के तरीकों पर असर करती है, जिससे इन्सान का फोकस अपनी तुरंत की ज़रूरतों और खतरों पर ही रह पाता है| शोध में पाया गया कि अपनी ख्वाइशों और सपनों की पूर्ति के प्रति जोख़िम लेने की तैयारी नहीं हो पाती है|

हमें ऐसे योजनाएं बनानी होंगी जिनसे इन समुदायों के पास रोज़गार के कारगर विकल्प हों और एक सम्मानीय व निश्चित आमदनी की व्यवस्था हो सकें| जब तक यह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता, तब तक इस समुदाय को इसके पारंपरिक काम (तीतर और छोटे जानवर पकड़कर बेचना) करने की छूट दी जानी चाहिए, जिससे कि वे अपना जीवन-यापन इज़्ज़त से कर सकें|

कमाई अथवा क्षमता-निर्माण की शासकीय योजनाओं का पारधी समाज में शून्य पहुँच

समुदाय जीविकौपर्जन के लिए बहुत अलग अलग तरह के काम करते है लेकिन काम मिलने में बहुत मुश्किलें है और काम की स्थितियां भी बहुत जोखिमों से भरी हुई हैं| जब महिलाऐं या बच्चे बीनने जाते है तो उन्हें हर तरह के कचरे में हाथ डालना होता है| हुनर वाले लोगों को भी पारधी जाति का होने की वजह से लोग अपने यहाँ काम पर नहीं रखते उन्हें हमेशा संदेह की नज़र से ही देखते हैं| काम के दौरान पुलिस का जोखिम हमेशा रहता है| कचरा बीनने के दौरान, वेटर के काम से देर रात लौटते समय युवाओं को पुलिस द्वारा अक्सर रोका जाता है और पैसे की मांग की जाती है कई बार थाने भी ले जाते है| फुटपाथ पर मनिहारी की दुकान लगाने पर नगर निगम सामान उठा कर ले जाते है या सड़क पर फेंक देते है| निगम द्वारा घर से कचरा उठाने का काम करने से लोगों को सड़क पर अब उतना कचरा भी नहीं मिल पा रहा है, जिससे कमाई पर असर हुआ है|

लोगों को किसी भी सरकारी योजना के मार्फ़त कभी भी बैंक लोन नहीं मिल पाया है| यह स्थिति काफी भयानक है कि शासन की असंगठित क्षेत्र के लिए योजनायें या हुनर प्रशिक्षण के दावे पारधी समाज को छू भी नहीं रहे हैं|

रेन्के आयोग ने भी स्पष्ट ज़िक्र किया है कि घुमक्कड़ एवं विमुक्त समाजों तक पहुँचने के लिए विशेष प्रयास होने होंगे और अपनेआप लोग आगे तक नहीं आ पाते हैं|

सरकार को इस दिशा में ठोस योजना बनाकर उसका मजबूत क्रियान्वयन करना होगा| रोज़गार के लिए आसान लोन, कौशल विकास के लिए प्रशिक्षण जैसी योजनाएं विशेष तौर पर पारधी समुदाय को ध्यान में रखते हुए संशोधित करनी होंगी| कचरा बीनने वाले लोगों को भी सुरक्षा उपकरण मुफ्त उपलब्ध करने की ज़िम्मेदारी सरकार को लेनी चाहिए|

स्थायीपन के बावजूद पारधी बसाहटों में मूल सुविधाओं की कमी

पारधी बसाहटों में लोग तीन दशकों से भी रह रहे हों, किन्तु फिर भी वहाँ बिजली, पानी, शौचालय, सड़क जैसी मूलभूत सिविधाओं का आभाव है|दैनिक ज़रूरतों के लिए पानी खरीदना और कुछ घरों में बिजली न होने की परिस्थितियाँ भी सामने आयीं| राजस्थान में घुमक्कड़ समुदायों के एक अध्ययन का अवलोकन था कि ज़मीन और आवास के अधिकार की पूर्ति नहीं होने के चलते लोगों के जीवन के विभिन्न आयामों पर असर पड़ता है| इस अध्ययन की प्रमुख सिफारिश थी कि किसी भी समुदाय के घुमक्कड़ या कोई भी और स्व-निश्चित की गयी जीवनशैली के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय मापदंडों के आधार पर सबके लिए पर्याप्त आवास होना चाहिए|

सरकार को इन बसाहटों में सभी मूलभूत सुविधाएँ मुहैया करनी चाहियें और इस समाज की संस्कृति और काम के स्वभाव अनुसार ही आवास की व्यवस्थाएं करनी चाहिए, नहीं तो योजनायें विफल होने की सम्भावना ज़्यादा होती है| आवास निर्माण के लिए उचित आर्थिक मदद भी हो पाए ताकि लोग सम्मानपूर्वक जीवन जी सकें|

शिक्षा वर्तमान पीढ़ी में जगह नहीं बना पाई है

शिक्षा के लिए अभी भी पारधी समुदाय में जगह बनाने की ज़रूरत है| आज शिक्षा अधिकार कानून होने के बाद भी इस समुदाय की शिक्षा तक पहुँच एक दिवास्वप्न की तरह है;सर्वे की गयी सभी जगहों पर बच्चों का शाला त्यागने और स्कूल में कभी नामांकन न होने की दर बहुत ही अधिक है| लड़कियों की शिक्षा का स्तर तो और भी निम्न स्तर पर है|

समुदाय की विपरीत परिस्थितियों के साथ साथ बच्चों की पढ़ाई में आगे नहीं बढ़ना की एक बड़ी वजह शिक्षा तंत्र की नाकामी और पारधी समाज के लिए तिरस्कार का भाव है| ऐसा प्रतीत होता है कि ये बच्चे ड्राप आउट नहीं है बल्कि उन्हें सुनियोजित तरीके से स्कूल से बाहर किया जा रहा है|स्कूलों में इनका नामांकन हो, यह भी प्रयास नहीं होता है और स्कूलों में रह पायें, यह भी शासन में किसी को चिंता नहीं है| 2012 में मुम्बई के पारधियों के बीच किया गया अध्ययन भी यही दिखाया कि स्कूल जाने की उम्र वाले 61% पारधी बच्चों का कभी भी नामांकन नहीं हुआ है|

महाराष्ट्र में कहीं कहीं पर (नागपुर, अमरावती, नासिक) पारधी समाज के लोगों द्वारा ही शिक्षा के मजबूत प्रयास दिखते हैं| समुदाय के अन्दर से ही लोग जब ख्वाब देखते हैं और इस ख्वाब के लिए प्रतिबद्ध हो जाते हैं, तो समाज में रूढीवादी विचारों में बदलाव की गति और फैलाव और फ़ैल पाता है|

इन समुदायों में शिक्षा के क्षेत्र में ज़्यादा से ज़्यादा रोल मॉडल तैयार करने होंगे जो बाकियों को भी उनके समकक्ष आने के लिए प्रेरित करेंगे| सरकारों और स्वयं सेवी संगठनों को पारधी समाज में शिक्षा की बेहतरी के लिए सबसे अच्छे संसाधनों और प्यार व सम्मान भरे कार्यक्रमों के निवेश करने की ज़रूरत है| अनुचित जनजाति के सकरात्मक प्रावधान उपलब्ध होने से चीज़ें बदलेंगी|

बाहरी समाज की तरफ से क्रूर और लगातार प्रतारना का पारधी व्यक्तित्व और समुदाय पर गहरा असर

भारतीय समाज की अंदरूनी गैर-बराबरी एवं सवर्ण तबकों का सामाजिक और आर्थिक वर्चस्वपूर्ण व्यवहार के साथ पारधी का 'अपराधिक जनजाति' का ऐतिहासिक ठप्पा उन्हें समाज में घृणा और तिरस्कार का बिंदु बनाता है| पारधी होना, नौकरी न मिलना, कचरा बीनने का काम करने पर मजबूर होना यह सब जुड़े हुए बिंदु है और एक दूसरे को और गहराई से स्थापित करते जाते हैं| जीवन के शुरूआती वर्षों से ही एक पारधी बच्चे को समाज से बहिष्कार मिलना शुरू हो जाता है; यह हिंसा व नकारत्मकता जीवनभर उसके साथ रहती है, चाहे वो किसी भी शासकीय संसथान में हो, पुलिस या स्कूल, या हो मध्यम वर्गीय समाज से, जो उनको न सड़क पर कबाड़ चुनते हुए स्वीकारता है, न कहीं नौकरी देने के लिए तैयार होता है| ये व्यवहार प्राकृतः उनके व्यक्तित्व को असर करता है और धीरे धीरे उनके आपसी रिश्तों और जीवन के निर्णायों में परिलक्षित भी होता है|

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुए शोध बताते हैं कि पुलिस हिंसा से पीड़ित लोग अपने ज़िन्दगी को अपने बस में नहीं देख पाते और हमेशा एक छोटे समय-काल में अपने आप को देखते हैं| अतः इस तरह की असुरक्षित व विषम परिस्थितियों में अपने लिए भविष्य की योजना बना पाना उनके लिए एक कठिन चुनौती होती है| इन हालातों से जीवन के सपने कही गुम हो जाते है और ज़िन्दगी इन्ही दुष्कर परिस्थितियों में उलझती रहती है|

रेन्के आयोग की सिफारिशों में बड़े पैमाने पर लोगों को जागरूक करने के लिए और उनके विरुद्ध फ़ैली भ्रांतियों और पूर्वाग्रहों को तोड़ने की बहुत आवश्यकता है और इस उद्देश्य हेतु राज्यों के मुख्यमंत्रियों और प्रशासकों की बैठक आयोजित कर ठोस कदम उठाये जाने की बात करे|

मानसिक स्वास्थ्य के प्रति पहल की तीव्र आवश्यकता

पारधी समुदाय में अप्राकृतिक मौतों का दर बहुत ज़्यादा है, सभी परिवारों में कोई परिवारजन बुढ़ापे के पहले मर चुके हैं, जिसमें आत्महत्या की घटनाएँ भी उभर कर आती हैं|

सभी बसाहटों में, ग्रामीण या शहरी, समाज के अलग-अलग उम्र के लोगों ने खुदकुशी करी है| ऐसा समझ आता है कि पारधी होने के नाते जीवन में रोज़ाना के अनुभव बहुत पल एक अधूरेपन और दबे हुए क्रोध में छोड़ देते हैं| शहर में 'मुख्यधारा' समाज हो या पुलिस, जब लगातार एक पारधी को पूरी तरह से नकारते हैं; इसके कारण लोगों के मन में आत्म-घृणा होने की संभावना होती है और भविष्य अंधेर लगता है| विभिन्न स्थितियों में माँ हो या पिता, बच्चा हो या वयस्क, सभी तनावपूर्ण जीवन में अपने आप को फसे हुए महसूस कर रहे हैं| न समाज के अन्दर बहुत विकल्प हैं, न बाहर की दुनिया ने रास्ते दिये हैं| इस सबके बावजूद लोग बहुत हिम्मत और स्व-सम्मान बनाये रखते हुए जीते ही चलते हैं लेकिन कभी शरीर और मन थक जाता है, और खुद को ख़तम करने जैसा कदम उठाते हैं|

महाराष्ट्र में पारधी महिलाओं के शोध ने भी मानसिक बीमारियों की परिस्थितियों को दिखाया है, जिसमें खुदकुशी करने का झुकाव भी सामने आया है| अंतर्राष्ट्रीय शोध दिखाते हैं कि विभिन्न आधारों पर 'मुख्यधारा'समाज अपने से अलग लोगों और समुदायों को कालंकित करता है; HIV के साथ जी रहे लोग, समलैंगिक व्यक्ति, कुछ क्षेत्रों

में मुस्लिम होना या आदिवासी होना दुनिया से मज़ाक और ताने का आमन्त्रण का आधार बन जाता है| इस नकारात्मकता से निपटना मानसिक स्वास्थ्य की एक पहल मांगता है|

एक तरह से, पारधी समाज एक संकट-ग्रस्त आबादी है, और सहभागिता के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ साथ जीवन-यापन के लिए सहयोग सुविधाओं की आवश्यकता रखती है| इतनी बड़ी संख्या में लोगों की असमय अप्राकृतिक मौते हो रही हैं, जो समाज और सरकार दोनों ही की असफलता को दिखता है| हम देख रहे है कि अधिकांश लोगों ने कभी न कभी खुद को ख़तम करने की कोशिश की है अतः एक तरफ, हमें पारधी समुदाय तक मानसिक स्वस्थ्य सेवाओं की पहुँच बनानी होगी और दूसरे तरफ, लोगों के के विभिन्न आयामों में जीवन जीने की बेहतर परिस्थितियां बनानी होंगी|

अनुसूचित जनजातियों के लिए उपलब्ध संवैधानिक सकारात्मक प्रावधानों से पारधियों को भोपाल में वंचित रखा गया है

राज्य के कई जिलों के साथ-साथ भोपाल, सीहोर और रायसेन में पारधी समुदाय की जाति की श्रेणीकरण की स्थिति एक अलग ही समस्या है जिसकी वजह से लोगों में शिक्षा के प्रति अरुचि दिखती है| व जाति प्रमाण पत्र की विसंगति को ख़तम करना होगा ताकि ये प्रयास इनके अपनी स्थिति में बदलाव की खुद की कोशिशों को बल दे पाएं और वे बाकि दुनिया की गति से कदम ताल मिला पाने में समर्थ हो पाएं|

भोजन की पर्याप्तता और बेहतर स्वास्थ्य परिस्थितियों की ओर जाने की आवश्यकता

समुदाय में पोषण आहार की स्थिति बहुत ही ख़राब है; लोगों को दो वक़्त का संतुलित भोजन नसीब नहीं होता| चेहरे से ही बच्चों में कुपोषण दिखाई देता है| महिलाऐं सुबह से बीनने चली जाती है तो बच्चे मांगकर अपना पेट भरते हैं| घर में खाना पकाने की स्थिति एक बार ही होती है वो भी शाम को| खाना पकाने के वक़्त ही सामग्री खरीद कर लाते हैं| जिस दिन काम पर नहीं गए उस दिन खाना पकाने के लिए उधार ही लेना पड़ता है| बारिश में हालात और भी मुश्किल हो जाती है| महिलाओं को गर्भावस्था में भी सही संतुलित भोजन नहीं मिलता है| राधाकृष्णन ने भी अवलोकन किया था कि लोगों की जीवनशैली और पारम्परिक भोजन में बदलाव के कारण, घुमक्कड़ समाज खाने की असुरक्षा की मुश्किल में है|

पूर्व में जड़ी-बूटियों और जानवर के अंगों से बनाई जा रही दवाईयां पर निर्भरता थी लेकिन अब इस देसी इलाज से जुड़ी सामग्री की नियमित उपलब्धता नहीं होते हुए, समय पर उपयुक्त उपचार नहीं होता है| इसके चलते बीमारियों में ग्रसित होना और एक लम्वे समय तक 'अस्वस्थ' की स्थिति में जीने की बात सामने आई हैं| लोग ऐसी बीमारियों से मर रहे हैं जो एक शहर में आसानी से ठीक हो सकती थीं| लेकिन टी.बी., पीलिया, का ज़िक्र काफी आया है| कुछ परिवारों में अन्शंगुत बीमारियाँ, जैसे अंधापन घर के सभी बच्चों में पाया गया है|

पारम्परिक इलाज के साधनों को बरक़रार रखने के लिए नीतियों और क्रियान्वयन में ज़ोर देना चाहिए| अलग अलग स्वास्थ्य प्रणालियों के मिश्रण से बेहतर स्वास्थ्य का असर सभी लोगों के लिए होगा| लोगों के पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण और उपयोग, दोनों आधुनिक उपचार के साथ इनका मिश्रण ज़रूरी है| पारधी बसाहटों में इन्हीं मिश्रित स्वास्थ्य प्रणालियों और नियमित स्वास्थ्य शिविर प्रदान होने चाहिए| राशन कार्ड की उपलब्धता आसान करनी चाहिए जिससे भोजन की निश्चितता कुछ हद तक बढ़ सके|

पुलिस के साये से बाहर निकलना जीवन को मौका देने के लिए ज़रूरी है

पुलिस से घिरे रहना और एक भयानक माहौल से गुज़रना और लगातार प्रताड़ित होते रहना, पारधी समुदाय के सभी उम्र और लिंग के लोगों के जीवन का हिस्सा है| लोग जितना भी कमाएं, उसका बहुत बड़ा हिस्सा पुलिस को जाता है| लोग अपने घर में भी सुरक्षा के भाव से नहीं रह सकते हैं| बहुत सारी औरतें जब पेट से थी, तब भी पिट चुकी हैं| ये वास्तविकताएं ऊपर विस्तार दिये गए सभी आयामों को असर करती हैं, वो लोगों की आर्थिक स्थिति हो या शिक्षा या स्वास्थ्य|

पुलिस व्यवस्था में मेहनतकश वर्ग और विशेषकर विमुक्त समुदायों के प्रति नज़रिया एवं दण्ड मुक्ति के भाव से लोगों के मानव अधिकारों के उल्लंघन की रीत को रोकने की आवश्यकता है| जैसे विशेष समूहों की परिस्थितियों को लेते हुए प्रशिक्षण होते हैं, वैसे ही विमुक्त व घुमक्कड़ समाज की वास्तविकताओं और विशेष ज़रूरतों को लेते हुए पुलिस व्यवस्था में ख़ास प्रशिक्षण होने की आवश्यकता है| रेन्के आयोग और इसके पश्चात् इदाते आयोग ने इस मुद्दे पर कई सिफारिशें दी हैं जिनकी पूर्ति पर ही प्रयास हो पाए तो स्थितियां बहुत बदलेंगी|

कानून व्यवस्था पारधी के अनुकूल नहीं है

न्याय व्यवस्था पारधी समुदाय को इन्साफ नहीं दिला सकती; यह अनुभव के आधार पर किसी भी नागरिक द्वारा प्रस्तुत की गयी समझ लोकतान्त्रिक देश के लिए एक धब्बा है| साथ ही अदालत की प्रक्रिया में मजबूरन घुसकर लोग और मुश्किलों में चले जाते हैं| सर्वे में यह बात आई कि लोगों को अदालत में हो रहे मुक़दमे से किसी भी तरह बचना चाहते हैं क्योंकि यहाँ बार-बार जाना, एक असहजता, खर्चा - सभी तरह से परेशानी बढ़ती है| इस कारण से पुलिस को पैसे देकर छूटना कभी

ज़्यादा सही निर्णय लगता है|

सर्वोच्च न्यायलय द्वारा घुमक्कड़ समाज के 6 लोगों के ऊपर दी गयी फांसी की सज़ा के निर्णय में त्रुटियाँ पहचानना और 16 साल के कैद होने के पश्चात् मुक्त करना बहुत स्पष्ट कुछ समाजों के प्रति व्यापक पूर्वाग्रहों को बताता है|

शासन को लोगों के ऊपर लगाये गए ऐसे केस जो उनके परंपरागत कामों से जुड़े हैं, जैसे तीतर पकड़ना या मुसाफिरी या बिलकुल मजबूरी के काम हैं जैसे भीख माँगना, इस प्रकार के मुकदमों को खारिज करना चाहिए क्योंकि इन्हें अपराध की नज़र से देखना उपयुक्त नहीं है| जज के प्रशिक्षण में विमुक्त समुदायों के प्रति सकारात्मक नज़रिया बनाने हेतु खास प्रयास होने चाहिए| पारधी बसाहटों में विधिक सह्याता शिविर करके लोगों का विश्वास जीतना चाहिए|

जात पंचायत

समुदाय की अपनी पंचायत की व्यवस्था है जो समुदाय के अन्दर के विवादों पर निर्णय लेती है|आज के प्रचालन के तरीकों से समाज के लोग पंचायत से बहुत त्रस्त हैं, लेकिन इसको बदलने के लिए रास्ते नहीं समझ आते हैं|

महाराष्ट्र ने 2015 में जात पंचायत अधिनियम पारित किया था, जिससे इन पंचायतों की सज़ायें और दण्ड को खारिज किया| लेकिन क्योंकि जात पंचायत व्यक्ति को जात से बाहर कर सकती है और यह एक इंसान और उसके परिवार को रोज़ की जीवन में बहुत बड़े रूप से असर करता है, लोग इसको बाय-पास करने में डरते हैं| इसके ऊपर, एक विकृत राज्य में जहाँ विमुक्त समाज के लोगों को अपराध में सबसे पहले इंगित करना, संविधान और कानून-व्यवस्था में भरोसा बनना भी मुश्किल है, और लोग प्रशासनिक, निर्वाचित और न्यायिक अधिकारी से ज़्यादा अपनी पंचायत पर ही उम्मीद रखते हैं|

जब अंदरूनी न्याय व्यवस्था ही शोषण का कारण बन रही है, समाज के अन्दर की ताकत को भी इसको बदलने की दिशा में ताकत लगानी होगी| युवा और महिलाएं इस बदलाव की माँग को रूप दे सकते हैं| एक नई पीढ़ी सपनों की पूर्ती के लिए उम्मीद रखती है, और जीवन का अभी एक लम्बा रास्ता पार करना है, इसलिए उसमें आनेवाली मुश्किलों को और ज़्यादा बदलने के लिए जोख़िम उठाने के लिए भी तैयार होती है| साथ ही महिलायें भी संगठित होकर अपनी बात को नायक के सामने रखने के लिए युवा पीढ़ी का साथ दे सकती है|

इसके साथ ही देश की न्याय प्रक्रिया को भी जात पंचायत के उद्दंड निर्णयों और सज़ाओं पर सख्ती बरतनी चाहिए| यह नहीं उम्मीद हो सकती कि पीड़ित व्यक्ति ही हमेशा खुद शिकयत करे| पुलिस को खुद जात पंचायत द्वारा सुनाये गए दंड जिनमें शारीरिक हिंसा शामिल है, उन पर जुर्माना करने की पहल करनी चाहिए|

स्थानीय स्तर पर राजनैतिक दलों से इनकी पहुँच बने

अभी सभी राजनैतिक दल विमुक्त समुदायों को वोट की नज़र से देखने लगे हैं, और बड़े सम्मलेन के साथ साथ इनके नायकों को अपने राजनीति में ले लिया है| लेकिन स्थानीय स्तर पर पारधी रहवासी के उनके पार्षद और सरपंच से काफी दूरी ही है| बसाहटों की मूल ज़रूरतों को पूरा करने के लिए लोग कम ही पार्षद के पास गए हैं, और हाल में ही उनके मध्य संगठन के प्रयास पर यह शुरुआत हुई है| पुलिस से समझौता करने हेतु या कोई भी दस्तावेज बनाने हेतु लोग बस्ती स्तर के स्थानीय दलालों के काबू में हो जाते हैं, जिसमें उनका शोषण भी होता है|

कोलकर की टिप्पणी थी कि दलितों ने विमुक्त व घुमक्कड़ समाजों के मुकाबले मजबूत राजनैतिक संस्थाएं बनाई हैं, जिनको अब मुख्यधारा नेता वोट-बैंक नुमा पहचानते हैं| रेन्के आयोग ने भी बात राखी कि जहाँ जहाँ घुमक्कड़ समाज के छोटे समूहों ने भी अपनाप को संगठित किया है, उन्हें सामाजिक संरक्षण मिल पाया है|

आगे के लिए यही कोशिश होनी होगी कि पार्षद और राजनैतिक दल पारधी की वन्चित्ता और दूरी का केवल अपने स्वार्थ के लिए उपयोग न करें, वरन उनके विकास के लिए प्रतिबद्ध भी हो| पारधियों को भी अपने संगठन एवं सभी विमुक्त व घुमक्कड़ समाजों को अपने संगठन को मजबूत करते हुए बाहरी समाज के साथ अपनी माँगों के साथ हस्तक्षेप करना होगा|

पितृसत्तात्मक रिवाजों को बदलने की आवश्यकता

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कमज़ोर परिस्थितयों के चलते विकुक्त व घुमक्कड़ समाज की महिलाओं की स्थिति और खतरे में होती है| अपराधिक जनजाति के ठप्पे में जीते हुए, हिंसक परिस्थितियों में उनका होने के मौके भी बढ़ते हैं, और बच पाना भी मुश्किल हो जाता है| इन परिस्थितियों में घुमक्कड़ व विमुक्त समाज की औरतें बहुत पक्केपन, निर्भय और सुस्पष्ट तरह से, इनमें पारधी महिलायें भी शामिल हैं, बहुत भी मज़बूती से दुनिया का सामना कर रही हैं| 19 जनवरी 2018 को हुई एक जन-सुनवाई में पारधी, नट, बाछड़ा, इरानी, कंजर, भील महिलाओं ने अपने संघर्षों को साझा किया|

इसके साथ साथ इन समुदायों की महिलाओं के लिए घर के अन्दर का शोषण भी बहुत खतरनाक है| एक तरफ काम से आराम नहीं मिल पाता है, और दूसरी तरफ, हिंसा का रूप भी बहुत क्रूर है| कुछ महिलाएं बोली कि वो काम पर नहीं गई हैं,लेकिन काम पर नहीं जाने का कारण

उनकी बीमारी है, न कि बारिश में गीले होने की चिंता या ठंड के मौसम में सुबह का कोहरा| लड़कियों की शिक्षा के नाम पर गिनी-चुनी बच्चियां इन बसाहटों में पढ़ते हुए दिखती हैं| पुरुष-वर्ग के पास रोज़ का काम नहीं है और घर पर होना उनके पुरुष-एहम को असर करता है| अपनी कुंठा वे घर में औरतों पर ही निकलते हैं|

शासन और संस्थाओं को पारधी महिलाओं के रोज़ के जीवन की वास्तविक चुनौतियों को नज़र रखते हुए कार्यक्रमों की रूप-रेखा बनानी चाहिए| कैसे महिलाएं सही में सशक्त और आज़ादी महसूस कर सकें, चाहे वो सड़क पर हों जहाँ उन पर उनके समुदाय की ओर फेके जा रहे तिरस्कार और खुद महिला होते हुए अनजान पुरुष की ख़राब नज़र को पार करना होता है, या घर पर हों जहाँ वो पारधी संस्कृति के विभिन्न रूप को उनके हर पल को तय करते हुए जीती हैं| विमुक्त व घुमक्कड़ समाज के अधिकारों की लड़ाई में महिलाओं की आवाज़ को जगह मिलनी होगी|

मुस्कान के बारे में

मुस्कान 1997 से भोपाल की बस्तियों में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही एक संस्था है| हाशिए पर रहनेवाले बच्चों के लिए अर्थपूर्ण शिक्षा कैसी हो और उनकी पहुँच में हो - इसी सोच को साकार करने के लिए हम एक वैकल्पिक स्कूल और बस्तियों में शिक्षण केंद्र चला रहे हैं| वंचित समुदायों के बच्चे, युवक, महिलाएं और सभी वयस्कों के समूहों के साथ उनके अधिकारों की पूर्ति के लिए एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज के लिए हम कार्यरत हैं|

पारधी बच्चों को शिक्षा से जोड़ने के प्रयास में उनके जीवन की चुनौतियों को देखने का मौका मिला| आज पढ़ने क्यों नहीं आ पाये.. इसका जवाब कहीं न कहीं पुलिस या पैसों की ज़रूरत से जुड़ा रहता था| पढ़ाई का केंद्र बहुत बार बच्चों के लिए थकान से सोने के लिए या काम के बीच नहाने और कुछ देर कंप्यूटर पर बैठने के लिए आराम की जगह थी| इसी सब के बीच बच्चों और युवाओं को उनके प्रियजनों की लाश पर हवा देते हुए देखा| लड़कियों की मर्ज़ी को ख़तम होते हुए कुछ न कर पाने का एहसास जिया| किसी मायूस बच्चे के साथ घंटों बैठकर हिम्मत देने का रिश्ता बना| थाने के बाहर औरतों के साथ उनके बच्चों की आस लगाये सुबह से शाम बैठकर एक अन्याय का एहसास समझ आया|

हम शायद आज यह नहीं बोल पाएंगे कि इतने सालों में हम बहुत पारधी बच्चों को स्कूल की 12 साल की पूरी शिक्षा दिलवा पाए हैं, या बहुत कुछ ठोस दे पाए हैं| लेकिन हमने पारधियों से बहुत कुछ सीखा है| हमने दुनिया का एक रूप देखा है| इस यात्रा में हमारे बहुत दोस्त बने हैं| और हम यह देख पाए हैं कि इन सालों में, हमारे साझे रिश्ते से, दुनिया में पारधियों के साथ लगातार अन्याय को पार करने के लिए, उससे लड़ने के लिए, पारधी समाज के अन्दर से हमारे साथी खड़े हो गए हैं| इन लड़के लड़कियों के सपने बहुत हैं, और उनके अया-बा, नानी-नाना, दादी-दादा भी उनके सपनों की पूर्ति के लिए बहुत प्रयासरत हैं|

आज पारधी बच्चे बस्तियों के केंद्र में पढ़ रहे हैं और कई बच्चे मुस्कान के होस्टल में रहकर पढ़ाई आगे बढ़ा रहे हैं| नाटक और फ्रिसबी में अपना नाम रोशन कर रहे हैं| अपने समाज की पंचायत में, और हमारे समाज के पुलिस थानों और अदालतों में न्याय की बात कर रहे हैं| पारधियों के साथ के अनुभव से बनी सीख के चलते हमारे चिंता के दायरों में आज विभिन्न विमुक्त व घुमक्कड़ समुदाय जुड़ गये हैं|



मिट्टी का घर,
प्लाट नं 264-65 नीलबड़, भदभदा रोड, भोपाल - 462044, मध्य प्रदेश
वेबसाइट - www.muskaan.org
संपर्क - muskaan.office@gmail.com